सरस्वती विहार

मुहब्बतनामा

अमृता प्रीतम

अपना-अपना यथार्थ

मुहब्बत-वलियों और पीरों-फकीरों से लेकर साधारण से साधारण इन्सान के अस्तित्व का हिस्सा है, जो आँखों का सपना बनकर, माथे का चिंतन बनकर और रूह की प्यास बनकर इंसान के वजूद में शामिल है। पर इसके अर्थ अपने-अपने यथार्थ के अनुसार होते हैं।

मेरे उपन्यासों के पाठक मुझसे अक्सर इस लफ़्ज़ की व्याख्या पूछते हैं। उन्होंने स्वयं जिन्दगी में इस लफ़्ज़ को कैसे भोगा है, इसके अध्ययन के लिए मैंने अलग-अलग क्षेत्रों के और अलग-अलग माहौल में रहने-बसने वाले लोगों से बातें करके उनकी तड़प को और उनके यथार्थ को जानना चाहा है। उन्हीं बातों का संग्रह यह किताब है—मुहब्बतनामा, मेरे अपने नुक्ताए-नज़र सहित।

—अमृता प्रीतम

हर का कलमा आशिक पढ़ने / ११
एक नई ब्याही लड़की / १४
एक लरज़ मुहब्बत का / १७
मुहब्बत : एक हमगम / २१
मौन का ताजमहल ! / २५
एक तलाकशुदा लड़की : शीना / २८
एक ब्याहा-अनब्याहा मर्द / ३२
. एक ब्याही-अनब्याही औरत / ३५
दो हाथों के कर्म / ४०
मुहब्बत से गोरुजदा एक लटरा / ४३
एक अनब्याहा मर्द / ४८
दीवानगी की शिला / ५१
कसक कलेजे मांहि / ५३
एक बनजारन / ५७
— इन्तरेग्ना-विवेचन उर्मिला शर्मा / ६०
एक औरत और तीन आदमकद शीशे / ६४
एक शायर कृष्ण अदीब / ६८
एक कलाकार लड़की मीना / ७२
दो राहों का दर्द / ७५
रास्तों की दास्तान / ७६

८४ / मुहब्बत : एक अग्नि-परीक्षा
६१ / जमीला ब्रजभूषण
६६ / अपनी धूप में, अपनी छाया में
१०० / ब्याह और मुहब्बत : दो सवालिया फिकरे
१०५ / मलयालम लेखिका कमलादास की कलम से
११० / सोनिया की डायरी
१२० / आवाज की मलिका सुरिन्दर कौर
१२६ / एक प्यारी आवाज : सरला कपूर
१३० / ओरिआना फैलिसी की कलम से…
१३४ / मुहब्बत : एक स्वीकार
१४२ / जाति, कौम, मजहब और मुक्त विवाह
१४८ / रमेश बक्षी की तीसरी कसम
१५३ / रजामंदी : एक कानून
१५८ / जौक-ए-नजर
१६१ / एक चीख का इतिहास
१६४ / सच दी धूनी आशक वहिंदे

मुहब्बतनामा

मुहब्बतनामा

हक़ का कलमा आशिक़ पढ़ते...

ऐफ्रोडाइट

यूनानी इतिहास में मुहब्बत और हुस्न की देवी ऐफ्रोडाइट है। यह फ़ानी इंसान और लाफ़ानी देवताओं के बीच रूमानों को जन्म देती है। इसके जन्म की कल्पना समुद्र की लहरों से पैदा हुई झाग में से की गई है—और जिस धरती पर इसने पहला कदम रखा, वह साइप्रस की धरती मानी जाती है।

इशतर

मैसोपोटामिया में ऐफ्रोडाइट की इशतर नाम से पूजा की जाती है।

वीनस

रोमन वीनस का रूप भी ऐफ्रोडाइट से पहचाना जाता है।

इंसान ने रूमानी की कल्पना को चाहे देवी-देवताओं का रूप दिया, पर अपनी-अपनी समझ के अनुसार कभी ऐसे देवी-देवताओं को सिर्फ़ शारीरिक सुख से जोड़ दिया, कभी बलात्कार के कर्म से भी, कभी सिर्फ़ पैदाइश के कर्म से, और कभी अपनी रूह के हुस्न के मुताबिक यह रूप भी कल्पित किया, "समुन्दरों के तख्त पर विराजी हुई

कामदेव

भारतीय चिन्तन के अनुसार इंसान की कामना और सृजन-शक्ति का देवता कामदेव है। ऋग्वेद के अनुसार, कामना इंसानी बीज के रूप में फलती है। अथर्ववेद के अनुसार, कामदेव ही आदिसृष्टि था, वह ही परमात्मा था। उसे धर्म का पुत्र माना जाता था, और उसकी मां का नाम श्रद्धा था। कालान्तर में इसकी मां का नाम श्रद्धा के स्थान पर लक्ष्मी मान लिया गया। इसका जन्म ब्रह्मा से, पानी से, और स्वतन्त्र रूप में भी माना गया। इस देवता के अपने नाम भी समय-समय पर बदलते रहे। शिवजी ने जब उसे भस्म कर दिया, उसका नाम अनंग हो गया। उसके पांच बाण पांच फूलों से सजे हुए हैं—इस कारण उसका नाम कुसुमायुध भी हुआ और पुष्पधन्वा भी। मकर और मीन-चिह्न वाले झंडे के कारण उसका नाम मकर-केतु, मकरध्वज और मीन-केतु भी है। कृष्ण-रुक्मिणी के पुत्र के रूप में पैदा होने के कारण उसका नाम मायासुत भी है, श्री नंदन भी। इसी तरह इसके और कई नाम हैं—खरकंत, कलाकेलि, मधुदीप, संसार गुरु, राम, रमण और मदन। इस देवता की पहली मूर्ति—पांच बाण धारण किए एक जवान मर्द के रूप में—मथुरा में मिली थी।[1]

मुहब्बत के प्रतीकात्मक देवी-देवताओं का नाम कुछ भी हो, कुछ भी रूप हो, पर बात इंसानी रूह की है जिसने 'स्वयं' की अभिव्यक्ति के लिए यह देवी-देवता गढ़ लिए, तराश लिए। किसीने मुहब्बत की देवी को बुद्धि के तख्त पर बिठाया, किसीने इश्क के देवता को धर्म का पुत्र और श्रद्धा की कोख का जाया कहा।

यह इंसानी दिलों की सामर्थ्य होती है—दिलों की पाकीज़गी, जिसके बल से कोई एक, दूसरे के हुस्न को देख और पहचान सकता है। यही नजर होती है—जो धरती और अम्बर की तरह विशाल होकर समुद्रों और पर्वतों को, और चांद-तारों को अपने आंचल में ले

१. भारतीय व्यक्ति-कोष

हक़ का कलमा आशिक़ पढ़ते…

ऐफ्रोडाइट

यूनानी इतिहास में मुहब्बत और हुस्न की देवी ऐफ्रोडाइट है। यह फ़ानी इंसान और लाफ़ानी देवताओं में तीखे एहसासों को जन्म देती है। इसके जन्म की कल्पना समुद्र की लहरों में पैदा हुई झाग में से की गई है—और जिस धरती पर उसने पहला क़दम रखा, वह साइप्रस की धरती मानी जाती है।

इश्तर

मैसोपोटामिया में ऐफ्रोडाइट की इश्तर नाम से पूजा की जाती है।

वीनस

रोमन वीनस का रूप भी ऐफ्रोडाइट में पहचाना जाता है।

इंसान ने एहसासों की तीक्ष्णता को चाहे देवी-देवताओं का रूप दिया, पर अपनी-अपनी समझ के अनुसार कभी ऐसे देवी-देवताओं को सिर्फ़ शारीरिक सुख से जोड़ दिया, कभी बलात्कार के कर्म से भी, कभी सिर्फ़ पैदाइश के कर्म से, और कभी अपनी रूह के हुस्न के मुताबिक़ यह रूप भी कल्पित किया, "समझदारी के तख़्त पर विराजी हुई मुहब्बत।"

कामदेव

भारतीय चिन्तन के अनुसार इंसान की कामना और सृजन-शक्ति का देवता कामदेव है। ऋग्वेद के अनुसार, कामना इंसानी बीज के रूप में फलती है। अथर्ववेद के अनुसार, कामदेव ही आदिसृष्टि था, वह ही परमात्मा था। उसे धर्म का पुत्र माना जाता था, और उसकी मां का नाम श्रद्धा था। कालान्तर में इसकी मां का नाम श्रद्धा के स्थान पर लक्ष्मी मान लिया गया। इसका जन्म ब्रह्मा से, पानी से, और स्वतन्त्र रूप में भी माना गया। इस देवता के अपने नाम भी समय-समय पर बदलते रहे। शिवजी ने जब उसे भस्म कर दिया, उसका नाम अनंग हो गया। उसके पांच बाण पांच फूलों से सजे हुए हैं—इस कारण उसका नाम कुसुमायुध भी हुआ और पुष्पधन्वा भी। मकर और मीन-चिह्न वाले झंडे के कारण उसका नाम मकर-केतु, मकरध्वज और मीन-केतु भी है। कृष्ण-रुक्मिणी के पुत्र के रूप में पैदा होने के कारण उसका नाम मायासुत भी है, श्री नंदन भी। इसी तरह इसके और कई नाम हैं—खरकंत, कलाकेलि, मधुदीप, संसार गुरु, राम, रमण और मदन। इस देवता की पहली मूर्ति—पांच बाण धारण किए एक जवान मर्द के रूप में—मथुरा में मिली थी।[1]

मुहब्बत के प्रतीकात्मक देवी-देवताओं का नाम कुछ भी हो, कुछ भी रूप हो, पर बात इंसानी रूह की है जिसने 'स्वयं' की अभिव्यक्ति के लिए यह देवी-देवता गढ़ लिए, तराश लिए। किसीने मुहब्बत की देवी को बुद्धि के तख्त पर बिठाया, किसीने इश्क के देवता को धर्म का पुत्र और श्रद्धा की कोख का जाया कहा।

यह इंसानी दिलों की सामर्थ्य होती है—दिलों की पाकीज़गी, जिसके बल से कोई एक, दूसरे के हुस्न को देख और पहचान सकता है। यही नजर होती है—जो धरती और अम्बर की तरह विशाल होकर समुद्रों और पर्वतों को, और चांद-तारों को अपने आंचल में ले

---

१. भारतीय व्यक्ति-कोष

सकती है। और इस तरह कोई इंसान आशिक के रूप में—किसी इंसानी सूरत में से खुदा का दीदार पा लेता है।

यह सिर्फ मुहब्बत होती है—जिसकी शक्ति के आगे समाज की रीतियों और परम्पराओं में लिपटे हुए छोटे-छोटे विचार, सचमुच बहुत छोटे और बौने हो जाते हैं। और जिसके सामने—रंगों, नस्लों और मजहबों के कायदे-कानून—थाल-पोथियों जैसे हो जाते हैं।

पंजाब के एक लोकगीत की एक पंक्ति आशिकों के वेद और कुरान के समान है—"इशक आहंदा—मेरा शौक वनिया नू, जिहनूं हारी सारी की जाणे"[1] और ऐसे जब कोई इंसान वनी बनते हैं, हक और सच का कलमा वही पढ़ते हैं। तब उनमें से न किसीका मन दूसरे के मन से झूठ बोल सकता है, न किसीका तन किसीके तन से झूठ बोल सकता है…।

1. इश्क कहता है, मेरा शौक वनियों-संन्यासियों को है, इसे साधारण आदमी क्या जाने!

एक नई ब्याही लड़की

अगर तुम मुझे यह न बतातीं कि तुम्हारा ब्याह हो चुका है तो मैं तुम्हें कुंवारी लड़की समझती। तुम्हारी पढ़ाई कहां तक हुई है ?

मैंने एम० ए० में पढ़ाई छोड़ दी थी, ब्याह कर लिया था···।

मुहब्बत का जो भी सपना पाला था, ब्याह ने उसे कैसी हकीकत दी ?

मुहब्बत ? इस लफ्ज के बारे में अब सोचने को भी जी नहीं करता···।

क्यों ?

सोचा था, जिस तरह मुहब्बत का सपना, समझ और उम्र के साथ, बड़े सहज रूप में आ जाता है, उसी तरह उसका सच होना भी सहज और स्वाभाविक होगा···।

यह अस्वाभाविक क्यों हो गया ?

क्योंकि बाहरी ताकतें अस्वाभाविक शक्ल में हर चीज पर गलबा पा लेती हैं—विचारों पर भी। कितने समय तक तो यही लगता रहता है कि जो भी गलत है, जो भी जबरदस्ती है, वह सब कुछ जिन्दगी से झाड़ा जा सकता है, धूल-मिट्टी की तरह पोंछा जा सकता है, पर धीरे-धीरे यह भुलावा भी उतर जाता है। कभी आंखें उठाकर दूर परे किसी

सकती है। और इस तरह कोई इंसान आशिक के रूप में—किसी इंसानी मूरत में से खुदा का दीदार पा लेता है।

यह सिर्फ मुहब्बत होती है—जिसकी शक्ति के आगे समाज की रीतियों और परम्पराओं में लिपटे हुए छोटे-छोटे विचार, सचमुच बहुत छोटे और बौने हो जाते हैं। और जिसके सामने—रंगों, नस्लों और मज़हबों के कायदे-कानून—बाल-पोथियों जैसे हो जाते हैं।

पंजाब के एक लोकगीत की एक पंक्ति आशिकों के वेद और कुरान के समान है—"इश्क आहंदा—मेरा शौक बलियां नूं, जिहनूं हारी सारी की जाणे"[1] और ऐसे जब कोई इंसान वली बनते हैं, हक और सच का कलमा वही पढ़ते हैं। तब उनमें से न किसीका मन दूसरे के मन में झूठ बोल सकता है, न किसीका तन किसीके तन से झूठ बोल सकता है···।

---

1. इश्क कहता है, मेरा शौक वलियों-पैगम्बरों को है, इसे साधारण आदमी क्या जाने!

एक नई ब्याही लड़की

अगर तुम मुझे यह न बतातीं कि तुम्हारा ब्याह हो चुका है तो मैं तुम्हें कुंवारी लड़की समझतो। तुम्हारी पढ़ाई कहां तक हुई है ?

मैंने एम० ए० में पढ़ाई छोड़ दी थी, ब्याह कर लिया था···।

मुहब्बत का जो भी सपना पाला था, ब्याह ने उसे कैसी हकीकत दी ?

मुहब्बत ? इस लफ्ज के बारे में अब सोचने को भी जी नहीं करता···।

क्यों ?

सोचा था, जिस तरह मुहब्बत का सपना, समझ और उम्र के साथ, बड़े सहज रूप में आ जाता है, उसी तरह उसका सच होना भी सहज और स्वाभाविक होगा···।

यह अस्वाभाविक क्यों हो गया ?

क्योंकि बाहरी ताकतें अस्वाभाविक शक्ल में हर चीज पर गलबा पा लेती हैं—विचारों पर भी। कितने समय तक तो यही लगता रहता है कि जो भी गलत है, जो भी जबरदस्ती है, वह सब कुछ जिन्दगी से झाड़ा जा सकता है, धूल-मिट्टी की तरह पोंछा जा सकता है, पर धीरे-धीरे यह भुलावा भी उतर जाता है। कभी आंखें उठाकर दूर परे किसी

अगर वह मेरे विचारों का 'वह' होता—तो ये सारी बातें मैं उससे करती। फिर तो अंत को भी उसके साथ मिलकर एक आरंभ बना सकती थी, पर अब चुप हूं।

तुमने कभी उस मर्द का दृष्टिकोण जानने की कोशिश की है ?

बहुत कोशिश की, एक दोस्त बनकर भी उसे समझना चाहा। यह भी सोचा कि अगर मेरी जगह कोई और लड़की उसकी जिन्दगी की तसल्ली बन सकती है तो मैं बड़ी सहजता से राह से हट जाऊंगी, पर तसल्ली और खुशी का कन्सेप्ट ही उसका कन्सेप्ट नहीं है।

आखिर उसकी कोई मांग तो होगी ?

शायद एक ही मांग है—एक नौकरानीनुमा बीबी।

और वह कोई भी हस्सास-दिल औरत नहीं हो सकती···।

सिर्फ वह औरत हो सकती है, जो कागज पर जिन्दगी की इबारत बनने की जगह सिर्फ एक ब्लाटिंग पेपर बन जाए···और मुझे यह जरूर पता है कि मैं ब्लाटिंग पेपर नहीं बन सकती !

चेहरे को देखने को जी भी करता है, पर जिन्दगी का यथार्थ पैरों को रोककर खड़ा हो जाता है कि वही गलती फिर दोहराई जाएगी···।

तुम्हारे खयाल में किसी सपने की पूर्ति के लिए जिन्दगी के पास कोई संभावना नहीं है ?

नहीं, पर यह जवाब मेरे सहज चिंतन का नहीं है, मेरे तल्ख तजुर्बे का है। संभावना रहती है—जवानी के परले सिरे के भी परे तक। यह सपना जैसे स्वाभाविक से अस्वाभाविक हो गया है···कभी अस्वाभाविक ने फिर स्वाभाविक भी हो सकता है। मैं जिन्दगी के चमत्कार में अपना विश्वास नहीं खोना चाहती। मुझे कभी कुछ-कुछ पल इसके सहज होने का तजुर्बा है, इसलिए सोचती हूं—अगर पल सहज हो सकते हैं तो वर्ष भी सहज हो सकते हैं···।

अगर जिन्दगी के किसी मोड़ पर तुम्हें अपना सपना सच होता हुआ लगे, उस समय उसे हकीकत बनाने के लिए तुम क्या करोगी ?

सपने का सच मुझे खुद राह दिखाएगा। सच में बड़ी शक्ति होती है।

उस समय राह में कानून भी आएगा, सामाजिक विरोध भी और शायद आर्थिक परेशानी भी···

'शी' के वजूद में जब सारे का वक्त [illegible] है [illegible] नहीं होता—एक अंधेरे के बाद नई रोशनी का [illegible] शुरू होता [illegible] है। सो, बीच में··· जितना भी अंधेरे का [illegible] होगा, [illegible] करके चल लूंगी, क्योंकि पता होगा कि अंधेरा [illegible] नहीं है। जैसे 'शी' एक लंबा सिलसिला है—[illegible]। फिर अंत का और फिर आरम्भ का··· [illegible] 'शी' वाला कन्सेप्ट है। [illegible] भी आखिरी हरफ नहीं होता···

जिसके साथ ब्याह हुआ है, तुमने उसके [illegible] देखी है ?

अगर वह मेरे विचारों का 'वह' होता—तो ये सारी बातें मैं उससे करती। फिर तो अंत को भी उसके साथ मिलकर एक आरंभ बना सकती थी, पर अब चुप हूं।

तुमने कभी उस मर्द का दृष्टिकोण जानने की कोशिश की है ?

बहुत कोशिश की, एक दोस्त बनकर भी उसे समझना चाहा। यह भी सोचा कि अगर मेरी जगह कोई और लड़की उसकी जिन्दगी की तसल्ली बन सकती है तो मैं बड़ी सहजता से राह से हट जाऊंगी, पर तसल्ली और खुशी का कन्सेप्ट ही उसका कन्सेप्ट नहीं है।

आखिर उसकी कोई मांग तो होगी ?

शायद एक ही मांग है—एक नौकरानीनुमा बीवी।

और वह कोई भी हस्सास-दिल औरत नहीं हो सकती···।

सिर्फ वह औरत हो सकती है, जो कागज पर जिन्दगी की इबारत बनने की जगह सिर्फ एक ब्लॉटिंग पेपर बन जाए···और मुझे यह जरूर पता है कि मैं ब्लॉटिंग पेपर नहीं बन सकती !

गई थीं, बाकी छः अभी कुंवारी थीं, जब फूफा घर-बार और औरत को जुए में हारकर बेटियों को भी दांव पर लगाने लगा…।

बुआ का नाम नहीं पूछूंगी, पर यह किस शहर की बात है ?

मलेरकोटले की। उस समय बुआ की सबसे छोटी बेटी सात महीने की थी, जब गोद की उस बच्ची को भी फूफा जुए में दांव लगाकर हार गया।

बुआ और छोटी बच्ची को जुए में जीतनेवाला अपने घर ले गया ?

नहीं, वह वहीं रहती रही—सिर्फ जिस रात को उस आदमी का जी करता, वह बुआ को ले जाता। उस समय छः में से जो तीन बड़ी लड़कियां थीं, वे बहुत डर गईं, और घर से भागकर गांव अपनी दादी के पास चली गईं। बाकी दो और छोटी लड़कियां रह गईं, उन्हें भी फूफा ने जुए में हार दिया। फिर जब इस सारी बात का पता बुआ के भाइयों को लगा, तो वे अपने घरों का सारा गहना-पत्ता बेचकर और रुपये पल्ले में बांधकर मलेरकोटले पहुंचे, और वहां जाकर जीतनेवाले जुआरी के पैसे उतारकर अपनी बहन और तीनों लड़कियों को छुड़ाकर ले आए। वापस आकर जल्दी-जल्दी दो बड़ी लड़कियों के ब्याह, जो भी लड़के सामने आए, उनसे कर दिए। उनमें से एक ड्राइवर था, दूसरा फौज में सिपाही। पर वे दोनों लड़कियां ब्याह के बाद एक-एक बार ससुराल जाकर घर आ बैठीं। उन्हें अपने आदमी पसंद नहीं थे। इसलिए एक रात दोनों घरवालों की चोरी से बंबई चली गईं, जहां उनकी सबसे बड़ी दो बहनें ब्याही हुई थीं। लड़कियां चली गईं तो वह ड्राइवर और सिपाही दोनों हमारे दरवाजे पर आ बैठे… कि या तो वे लड़कियां ढूंढ़कर ला दो, जिनसे हमारा ब्याह हुआ है, नहीं तो हम आपकी बेटियों को उठाकर ले जाएंगे।

सो, इस तरह घबराकर, तुम्हारे मां-बाप ने तुम्हारा तेरह बरस की उम्र में ही ब्याह कर दिया ?

ब्याह तो हो गया, पर ससुराल आई तो पता लगा कि मेरा खाविंद किसी और औरत के साथ रहता है। एक बात अच्छी हुई कि मेरे ससुर साहब और मेरे जेठ साहब बड़े अच्छे थे···उन्होंने मेरे खाविंद को समझा-बुझाकर वह औरत छुड़वा दी। पर मेरे खाविंद को काम करने की आदत नहीं थी, इसलिए एक दिन तंग आकर मेरे ससुर साहब ने उसे घर से निकाल दिया···कि जा, अब खुद कमा। उसके साथ मुझे भी घर से निकलना पड़ा। दिल्ली की एक कोठी में नौकरों का क्वार्टर रहने के लिए मिला और मैं अपने पति से चोरी कोठीवालों के कपड़े धोकर कुछ पैसे कमाने लगी। इस अरसे में मेरे घर एक बेटी का जन्म हुआ। जब वह कुछ बड़ी हुई और मैं उसे स्कूल में दाखिल करवाने गई तो मैं खुद भी स्कूल में दाखिल होकर पढ़ने लगी। उस समय यही एक बात समझ में आई कि पढ़ना जरूरी है, और पढ़कर अपनी रोटी कमाना जरूरी है। नहीं तो सारी उम्र लोगों के कपड़े धोने और बर्तन मांजने पड़ेंगे···बस, इसी तरह पढ़ते-पढ़ते एम० ए० तक पढ़ लिया··· ।

प्यारी औरत! इस गहरी खाई में से शायद कोई तुम्हारे जैसी औरत ही निकल सकती है, नहीं तो हिम्मत के हाथ पैर टूट जाते हैं··· ।

कई बरस झुग्गी में भी रहना पड़ा था···जिन झुग्गियों को पुलिस दिन में तोड़-फोड़ जाती है ··और रातों-रात उन्हें फिर बनाना पड़ता है···।

छलनियों जैसी इन घटनाओं में से सब कुछ छन जाता है। मुहब्बत के सपने जैसी चीज भी छन-बिखर गई होगी ··?

उसका कोई कंकर-सा बचा रह गया था, जो कलेजे में और माथे में संभालकर रखा हुआ था। पढ़ाई के दिनों में एक बहुत पढ़े-लिखे आदमी से मेल हुआ, जिसे मैं बेबस-सी प्यार करने लगी। मेरा पति बिल्कुल पढ़ा-लिखा नहीं है, शायद यही हसरत थी जो मेरे होंठों पर मुहब्बत

का लफ्ज ले आई। पर यह लफ्ज मेरे कानों ने सिर्फ मेरे मुंह से ही सुना, किस्मत के मुंह से नहीं सुना। दो-एक साल इस सपने-से को मैं अपनी आंखों में संजोए रही। पर फिर यह भी···जब मैं रोई, तो मेरी आंखों से निकल गया।

तुम्हारे पति को इस सपने की खबर हो गई होगी ?

सिर्फ यही बात होती, तब भी आंखें मींचकर मैं इस सपने को बचा सकती थी। पर यह हादसा उस ओर से घटा, जिस ओर से घटना नहीं चाहिए था। तब मुझे पता लगा कि इस दुनिया में सिर्फ औरत ही नहीं बिकती, मर्द भी बिकता है। मैं साधारण-सा गुजारे लायक कमा सकने वाली औरत थी···पर उस आदमी को मेरी जगह एक बहुत अमीर औरत मिल गई, जो उसे कार तक खरीद के दे सकती थी।

उसने उसके साथ ब्याह कर लिया ?

नहीं, उस औरत के पास पैसा तो है पर शायद कोई सामाजिक मजबूरी है कि वह ब्याह नहीं कर सकती। अब भी है···और जैसे मर्द किसी औरत को रखैल बनाकर रखता है, उसने उस मर्द को 'रखैल' के तौर पर रखा हुआ है। अमृताजी ! मैंने मुहब्बत के लफ्ज को एक छलावे की तरह देखा है, इससे ज्यादा मुझे पता नहीं कि मुहब्बत क्या होती है—बस, इतना कह सकती हूं :

रूह को दर्द मिला, दर्द को आंखें न मिलीं···
तुझको महसूस किया है, तुझे देखा तो नहीं !

भी लगाई थी। वैसे भी तीखे जज्बे मेरी रगों के खून में हैं। मेरे मां-बाप ने आज से कोई चालीस बरस पहले, एक-दूसरे से इश्क करके, ब्याह किया था। मैं उसी इश्क की जा-नशीन हूं। पर मैंने अपनी मां की तरह इश्क की पूर्ति का वरदान नहीं पाया।

पूर्ति का वरदान क्यों नहीं पाया ?

मैं सामाजिक मजबूरियों की चिनाव को तो तैरकर पार कर सकती हूं, पर किसीके दिल की चिनाव को कैसे पार करूं ? आज के महीवाल पुराने वक्तों के महीवाल नहीं हैं, जिनके होंठों पर सिर्फ सच होता था। पर जिनके होंठों पर सच न हो, सिर्फ सच की परछाई हो, वहां भुलावा खाने के सिवा कोई मंजिल नहीं होती।

ऐसा भुलावा कितनी बार पड़ा ?

सिर्फ एक बार मैं ऐसा भुलावा खा गई। पर अब मुझे आसानी से कोई भुलावा नहीं दे सकता। मां से जहां मैंने तीखे जज्बों का विरसा लिया है, वहां कुछ समझदारी का विरसा भी लिया है। दूसरे के लफ्जों के पीछे जो भी अर्थ छिपे होते हैं, वह मुझे जल्दी ही दिखाई दे जाते हैं। जो एक भुलावा खाया था, यूं तो उसका अरसा काफी लंबा था—कोई दो बरस, पर उसने मुझे सारी जिन्दगी के लिए होशियार कर दिया है···।

फिर जो मैंने तुम्हारे बारे में सुना है कि तुमने एक अमीर और विवाहित मर्द की मिस्ट्रेस बनना कबूल किया हुआ है, उसे किन अर्थों में समझूं—समझदारी के अर्थों में या दुनियादारी के अर्थों में ?

मैं समझदारी लफ्ज बरतना चाहूंगी। धन-दौलत के लिए किसीकी मिस्ट्रेस बनना होता तो तब बनती जब मेरे पास न कोई नौकरी थी, न कोई और सहारा। आज मैं बहुत अच्छी नौकरी पर हूं, खुद दो हजार रुपये महीना कमा लेती हूं। और दूसरी बात यह है कि अगर मिस्ट्रेस लफ्ज को दुनियादारी के लहजे में समझा जाए तो फिर मैं

सिर्फ एक ही आदमी की मिस्ट्रेस क्यों बनती ? बहुतों की बन सकती थी। पर मैं नहीं बनी। आपको बहुत साफ लफ्जों में बता सकती हूँ कि जहाँ नौकरी करती हूँ, अगर वहाँ के मालिक को [illegible] [illegible] दे सकूँ तो एक ही दिन में मेरी तनख्वाह दुगनी हो सकती है। पर मैंने तनख्वाह को दुगना नहीं किया। और एक बात [illegible] 'मिस्ट्रेस' लफ्ज नहीं समझना चाहती, क्योंकि इस लफ्ज का ताल्लुक पैसों से होता है। मेरा जिससे रिश्ता है, वो भी उससे कोई पैसा नहीं लेती। मैं इस रिश्ते को सिर्फ दोस्ती कहना चाहूँगी। यह सच है कि यह दोस्ती तन-मन की दोस्ती है। इससे मैंने कभी इनकार नहीं किया।

तुम सिर्फ एक हसीन लड़की ही नहीं हो, तुम अपने ख्यालों की तशरीह करना भी जानती हो। इसलिए और [illegible] से पूछ सकती हूँ कि उस मर्द ने तुम्हारी इस दोस्ती में उसके ब्याह और उसके घर में कोई दरार नहीं डाली?

नहीं ले सकी। यह शायद राह का एक पड़ाव बन जाए, जहां खड़े होकर मैं कुछ सांस ले सकूं, कुछ और हिम्मत जुटाकर असली मुहब्बत की तलाश कर सकूं···।

> **पर प्यारी लड़की ! अगर कभी मुहब्बत का रास्ता दिखाई भी पड़ गया तो, जिन्दगी की यह हकीकत, राह की रुकावट नहीं बनेगी ?**

इसीलिए दोस्ती का रास्ता चुना है, ब्याह का नहीं। अगर चाहती तो इस दोस्ती को ब्याह की शक्ल में बदल सकती थी, पर लगा—जब असली मुहब्बत का वक्त आएगा, तब ब्याह राह में अड़चन बनकर खड़ा हो जाएगा।

> **ब्याह सिर्फ कानूनी अड़चन होता है। पर इस तरह की दोस्ती इखलाकी अड़चन हो सकती है।**

नहीं, अगर वह मर्द सही अर्थों में मेरा महबूब होगा तो मेरी जिन्दगी के इन बरसों को गैरइखलाकी नहीं सोचेगा। वह मेरी रूह को पहचानेगा—मेरे बदन से हुए हादसे को नहीं !

मौत का ताजमहल!

लवलीन! एक सवाल खास तौर पर सिर्फ तुमसे पूछा जा सकता है कि एक बहुत हसीन लड़की का सबसे बड़ा सपना क्या होता है?

वह सही मर्द, जिससे वह मुहब्बत कर सके।

सही की तशरीह?

जहां अपना पूरा 'स्वयं' दूसरे के 'स्वयं' से बातें कर सके—यहां तक कि उसे बातें करने के लिए लफ्जों की भी मोहताजी न हो।

तुम्हारे इस चिंतन ने धरती की मिट्टी पर चलकर देखा है?

हां, देखा है। सिर्फ मिट्टी पर चलकर नहीं, मिट्टी में लिथड़कर भी।

फिर अपने बदन से मिट्टी को कैसे झाड़ा?

इस काम में ही मैं आज तक कामयाब नहीं हुई।

पर तुम्हारे जैसी लड़की, जिसके पास सिर्फ हुस्न ही नहीं, कला भी है…।

मिट्टी की गंध अभी ताजा है। उस मिट्टी ने कैसी उदासी दी, या कैसी खुशी, उसकी गंध शायद उस बात से भी बेनियाज है…यह भी कह सकती हूं कि वह गीली मिट्टी अभी तक सूखी नहीं है।

लवलीन ! तुम एक कलाकार के तौर पर फिल्म के माध्यम को अपनाना चाहती थीं, तुम्हारे उस सपने में मुहब्बत का सपना मिल गया था··· या मुहब्बत ने कला को पीछे करके पहली जगह ले ली ?

जब तक फिल्मों में थी, तब तक मुहब्बत को पहली जगह नहीं दी थी। वैसे मैं मुहब्बत को सबसे ऊंची जगह देती हूं।

उस समय तुमने जो एक गलत-सा विवाह किया था···वह मुहब्बत के तसव्वुर में से नहीं किया था ?

उस विवाह की सिर्फ पब्लिसिटी हुई थी, पर विवाह नहीं हुआ था। इसलिए तलाक की नौबत भी नहीं आई, क्योंकि विवाह की नौबत भी नहीं आई थी। सिर्फ जो इश्तहारबाजी हुई थी, उसकी खातिर एक कागज पर दस्तखत करने पड़े थे कि यह विवाह हुआ ही नहीं था।

फिर उस सदमे के बाद मुहब्बत का तसव्वुर कैसे कायम रखा··· और उसकी हकीकत कहां पहचानी ?

मुहब्बत की कशिश इंसान के अस्तित्व की तरह जिंदा रहती है, भले ही समय से उसका कुछ रूप बदलता है। तलाश भी जारी रहती है··· पानी के झरने की तरह···उस तलाश के दौरान मेरा तर्जुबा काफी वसीअ है। पर सबसे पहला मुहब्बत का जो खयाल मेरे अंदर है, मैं उसके नक्श और अंग तराशना चाहती हूं···ताकि वह एक वजूद पाकर दूसरे वजूद को पहचान सके। आज मैं बहुत नीची धरती का हिस्सा हूं, पर मेरा विश्वास उस क्षितिज में है जहां धरती और आसमान मिलते हैं···।

कभी किसीमें उस क्षितिज की झलक देखी है ?

सिर्फ झलकें देखी हैं—टुकड़ों में। इसके बारे में मैंने एक नज्म लिखी थी—**मैं सिर्फ रंगीन परछाइयों की पीड़ा को भोग रही हूं। क्षितिज को मैंने बेरंग शून्य के हवाले छोड़ दिया है !** ···और अंतिम पंक्ति है—**पीड़ा भी परछाइयों की तरह कभी ढल जाएगी !**

इतनी हसीन रूह को लेकर
मुश्किल लगता है ?

रोजी-रोटी कमाने की काबलि
लगता है ।

इसके लिए पैरों को धरती

हसी जुवान सीखी हुई थी, वह म
डिपार्टमेंट की हैड हूं, इसलिए
वह मेरी पसद की नौकरी है । पर

छ खिचा हुआ था। इसलिए
विवाह करने का फैसला
गह से पहले एक-दूसरे
का समय मिला।
चारी हो गई।
पर तैयार
सीझ
न

ग्यारह बजे तक नौकरी पर रहना कभी-कभी बहुत भारी लगता है . जब यह रूटीन कठिन लगने लगता है, जरूरतों के कांटे बहुत चुभने लगते हैं···।

इसका कारण सिर्फ रूटीन है या जिन्दगी का शून्य ?

जरूरतें हकीकत है, पर शून्य सिर्फ शून्य नहीं है। इसमें कुछ बेजान-सा होता जाता है···जख्म बहुत ताजा हैं । अभी तक मैंने सिर्फ यही जुर्रत की है कि जख्मों पर मक्खियां नहीं बैठने दी हैं·· पर मुझे उम्मीद है कि जख्म भर जाएंगे···जरूर भर जाएंगे···और यह जख्म जो रूह को लगा है, यह मेरे तसव्वुर का जख्म नहीं बनेगा·· पर एक डर-सा लगता है···!

क्या ?

खुदा न करे, जली हुई मोम में कोई आग लगा दे···बुझे संगमरमर के दीये से कोई ताज बना दे ।

नहीं, तवलीन ! मुहब्बत मौत का ताजमहल नहीं होती, जिन्दगी की कुटिया होती है···।

फिर खुदा में हिम्मत है तो यह करके दिखाए ।

लवलीन ! तुम एक क
अपनाना चाहती
गया था'' या

जब तक फिल
वैसे मैं म

एक तलाकशुदा लड़की : शीना

मैंने सुना है कि विवाह के समय तुमने सिर्फ मुहब्बत के नजरिये को सामने रखा था'''

मैं कालेज में पढ़ती थी। सिर्फ सत्रह बरस की थी, जब मैं उस लड़के से मिली, जिससे पांच महीने बाद विवाह कर लिया। उस समय'''उस उम्र में मुहब्बत सिर्फ एक सपना थी।

उस अल्हड़ सपने की तशरीह किन लफ्जों में की जा सकती है ? वह एक हसीन लड़का था ? बहुत पढ़ा-लिखा या बहुत अमीर या उसके पास बातचीत का कोई खास आकर्षक अंदाज था ?

वह खूबसूरत भी था, पढ़ा-लिखा भी, अमीर भी, पर जिस बात ने मुझे उसकी ओर खींचा था, वह उसका मर्दाना विश्वास से बातें करने का अंदाज था। मैंने सोचा—वह एक जिम्मेदार और प्यारा मर्द होगा। मेरे सिर पर बाप नहीं था, मुझे एक तगड़ी हिफाजत की जरूरत थी। मैंने समझा, वह मुझे हिफाजत दे सकेगा।

फिर ?

उस समय मेरी मां भी इस जल्दबाजी पर खुश नहीं थी और लड़के की बहनें भी हमसे इंतजार करने को कहती थीं। उसकी मां

नहीं थी, अपने बाप से उसका रिश्ता कुछ खिंचा हुआ था। इसलिए हम दोनों ने किसीकी भी परवाह न करके विवाह करने का फैसला कर लिया। असल बात यह है कि न हमने विवाह से पहले एक-दूसरे को गहरी तरह जाना, न ही विवाह के बाद जानने का समय मिला। विवाह को सिर्फ तीन महीने हुए थे, जब मुझे उम्मीदवारी हो गई। बच्चे की जिम्मेदारी के लिए हम दोनों ही मानसिक तौर पर तैयार नहीं थे। बच्चे का जन्म हुआ तो वह मुझे और बच्चे को देखकर खीझ उठा। मैंने भी मां के रूप में कभी अपनी कल्पना नहीं की थी। बहुत छोटी थी। मन से मां बनने के लिए तैयार नहीं थी। इसी मन की अरहड़-सी हालत में मेरा खाविंद दूसरी जवान लड़कियों की ओर ध्यान देने लगा और मैं दूसरे जवान लड़कों की ओर। मेरा खयाल है—[illegible] ऐसा बदले की भावना से किया था। वह जब मेरा दिल दुखा देता [illegible] मैं उसका बदला लेने के लिए और लड़कों के साथ हंसने-खेलने [illegible] जाती थी'''और इस तरह हम दोनों एक-दूसरे के लिए [illegible] होते गए'''अगर कभी मैंने इस दूरी को मिटाने की कोशिश [illegible] उसने मुझे धक्का-सा देकर और परे कर दिया। अगर [illegible] उसने कोशिश की तो मैंने गुस्से में आकर उसे और [illegible] हम दोनों में ही आत्मविश्वास नहीं था। अब [illegible] एक कोमल-सा पौधा होता है, जिसे पानी दे-देकर [illegible] कर पालना होता है, पर तब मैं यह बात नहीं [illegible]

> अगर अब यह समझ और यह गंभीरता [illegible]
> तो शायद उसने भी कर ली हो। ठीक है, [illegible]
> अगर तुम दोनों कच्ची उम्र के मरहले [illegible]
> भी दोबारा मिलकर जी सकते हो'''

नहीं, अब यह संभव नहीं है। अब मैं [illegible] कई-कोमलें बिल्कुल अलग थीं। वह [illegible] है। वह सिर्फ बलबों और ऐंग्लो-इंडियन [illegible] यह कि वह मेरे व्यक्तित्व को बिल्कुल [illegible]

हाजरी में नहीं रहती, मैं जैसे खिल नहीं सकती, सिमट-सी जाती हूं··· वह सिर्फ डामिनेट करना जानता है, और डामिनेशन से मुझे नफरत है। मैं मिट सकती हूं, पर किसीकी अपने 'स्वयं' को पीस डालने वाली अधीनता मैं सहन नहीं कर सकती।

अच्छा, क्या इस अर्से में तुम्हारी मुलाकात किसी ऐसे मर्द से नहीं हुई, जो सही अर्थों में मुहब्बत करने के काबिल हो ?

मैंने हर परिचय में सिर्फ एक खूबसूरत भुलावा पाया है। मर्द बड़ी जल्दी मुहब्बत का लफ्ज बोल देते हैं, पर उनके इस लफ्ज में अर्थ शामिल नहीं होता। यह शायद मेरी गलती है कि मैं पूरा देना चाहती हूं, पूरा लेना चाहती हूं। एक यह भी चीज है कि जिन घटनाओं ने मुझे तोड़ा है, वह एक चीज को नहीं तोड़ सकीं। मुझमें अब भी विश्वास करने की ताकत है, जो टूटी नहीं है। मैं कोई सती-साध्वी जैसी या शहीद जैसी नहीं बनना चाहती। मैं जीना चाहती हूं। मुहब्बत करना चाहती हूं। एक दोस्ती की थी···पर कुछ दिन बाद देखा कि इतिहास अपने-आपको दोहरा रहा है। वह भी मेरे खाविंद की तरह बहुत शराब पीता था, और शराब पीकर मेरे लिए अच्छे लफ्ज नहीं बोलता था। फिर मैं नौकरी के सिलसिले में जर्मनी गई थी। वहां एक जर्मन लड़के से दोस्ती हो गई, पर कुछ दिनों बाद लगा, किसी भी मर्द से जिन्दगी का इकरार नहीं लिया जा सकता। फिर हिन्दुस्तान आकर एक और लड़के से दोस्ती हुई, पर वह अभी कुछ भी कमाता नहीं था। मैं कुछ कमाती भी थी, और कुछ मेरे पिताजी की जायदाद में से मुझे हिस्सा मिला था···इसलिए मेरे पास खुले पैसे थे। देखा कि वह लड़का भावुक पक्ष से भी और आर्थिक पक्ष से भी मुझ-पर निर्भर हो रहा था। साथ ही मुझे विवाह की सूरत में स्वीकार करने के लिए अपनी मां से भी बात कर सकने का साहस उसमें नहीं था।

इस हालत में तुम कुछ समय अकेली रहकर अपने अंदर आत्म-विश्वास पैदा करने की बात नहीं सोचतीं ?

मैं सचमुच एक उखड़े हुए पौधे की तरह हूं, जिधर की हवा आती है, उधर को ही झुक जाती हू। अब मैं सोचती हूं कि पहले मुझे धरती में अपनी जड़ लगानी है, पक्की और पुख्ता। नहीं तो बार-बार दोस्ती और रिश्ते की तलाश में भटकते हुए मैं कहीं नहीं पहुंचूंगी। मुझे अपनी बुनियादी असुरक्षा को भी जानना है। मैं इसका हल हमेशा बाहर खोजती रही हू। अब मैंने जाना है कि इसका हल मुझे सिर्फ अपने अंतर्मन से ही मिल सकता है। मुझे अपने-आपको अपने हाथो का सहारा देना है—अपने पैरों का सहारा देना है। पिछले दिनों मैं अपने-आपसे फिसल गई थी 'बड़ी डिप्रैशन मे आकर चरस, गाजा और अफीम भी लेती रही थी। एक ड्रग 'स्पीड' होती है, वह भी खाने लगी थी। पर ये सब कुछ अब छोड दिया है। इन सब चीजो से 'विल पावर' कम हो जाती है ''एल० एस० डी० भी ट्राई की थी, कोकेन भी। ये चीजें कुछ समय के लिए शरीर को अजीब ताकत देती हैं'' पेड़ों, पत्तियों में भी जिन्दगी धड़कती हुई दिखाई देती है ' जो अपने बदन की हरकत से मिलकर अजीब और विशाल शक्ति बन जाती है। पर यह सब शक्ति जैसे उधार ली हुई होती है'''यह अपनी ही नहीं बनती। अब मैं इन सब चीजों से स्वतन्त्र हो रही हूं ' बहुत हद तक हो भी गई हूं'''इस समय अपने में डिसिप्लिन पैदा कर रही हू, सबसे पहले मुझे इसकी जरूरत है। आजकल कोई नौकरी नहीं है, पर सवेरे नौ बजे से शाम पाच बजे तक किसी दफ्तर की मेज पर काम करना बहुत जरूरी है'''मुझे बेचारी-सी और हारी हुई औरत नहीं बनना है। जब तगड़ी औरत बन जाऊंगी, तब मुहब्बत भी करूंगी ' और मैं जानती हूं, सिर्फ तब मेरी मुहब्बत कामयाब होगी!

हां, शीना! मुहब्बत दो सयाने और स्वतंत्र व्यक्तित्वों का एक दूसरे की कद्र में से हुआ मेल होता है। उदास और निराश मर्दों और औरतों का संबंध सिर्फ कानून की नजर में रिश्ता होता है—सच की नजर मे नहीं।

एक ब्याहा-अनब्याहा मर्द

शर्माजी ! कई औरतों के साथ तो ऐसे हादसे हो जाते हैं कि वह ब्याही और अनब्याही होने के अधबीच खड़ी रह जाती है; पर मर्दों के साथ ऐसा हादसा होते नहीं सुना। आपके साथ कैसे हुआ ?

बात यह हुई कि मैं एक बहुत डरपोक लड़की से मुहब्बत कर बैठा (अब भी करता हूं)। उसने मुझसे शुरू में ही कह दिया था कि वह कभी मां-बाप की रजामंदी के खिलाफ कदम नहीं उठाएगी, पर वह किसी दिन मां-बाप को मना जरूरी लेगी। यह बात १९६२ की है, अब १९८० आ गया है, कितने बरस हुए ?

अभी सिर्फ अठारह बरस हुए हैं···

हां, राम-बनवास से सिर्फ चार बरस ज्यादा। इस अरसे में न वह मां-बाप को मना सकी है, न उनकी रजामंदी के खिलाफ कदम उठा सकी है।

इन अठारह बरसों में वह कभी बड़ी तीखी जज्बाती रौ में नहीं आई ?

आई थी। चार बरस हुए, हमने फैसला किया कि हम कोर्ट मैरिज

कर लेते हैं। जब कानूनी रस्म हो जाएगी, मां-बाप कसमसाकर खुद ही मान लेंगे। हमने कचहरी में कागज दाखिल कर दिए। कोशिश की कि कचहरी की तरफ से घर खबर न जाए, पर उसे हम रोक नहीं सके। कागज घर के पते पर जा पहुंचे, तो, ऐसे कागज चाहे खबर की तसदीक करवाने के लिए होते है, पर हरकारा इतना बेवकूफ था, सारे गली-मुहल्ले में पूछता गया कि फलाने का घर कहां है, उसकी लडकी के ब्याह के सम्मन आए हैं ' लडकी के मा-बाप को लोगों का बहुत डर था कि लड़की सिक्खों की और लडका ब्राह्मणों का, संबंधी-रिश्ते-दार, गली-मुहल्ला क्या कहेगा, और बात उन तक पहुंचने से पहले उल्टी पड गई। गली-मुहल्ले तक पहुच गई।

पंजाब का एक लोकगीत है—"बाहमना दे मुंडे जदों चौक पूरया, मां ने धी नूं लावां बैठी मुक्का हूरया!" उसका मतलब तो यह था कि लड़की वहां ब्याह नहीं करना चाहती थी—मां ने मुक्का दिखाकर फेरों के लिए बिठा दिया। पर यहां वह लोकगीत उल्टा हो गया···ब्राह्मणों का लड़का जब चौक पूरने लगा, बेटी फेरों पर बैठने लगी, तो मा ने मुक्का दिखाया कि यह क्या करने लगी है···।

बात मुक्के और त्योरी तक ही रह जाती तो खैर थी, पर शादी के सम्मन देखकर उसके बाप का हार्ट फेल हो गया···!

लडकी बेचारी पहले ही डरपोक थी, ऊपर से इस हादसे ने गुनाह का एहसास दे दिया।

फिर दो बरस बीत गए। एक दिन फिर जब वह जज्बाती रौ में आई, मैंने झटपट कचहरी में ब्याह के कागज दाखिल कर दिए···।

फिर उस बार भी सम्मन घर पहुंच गए?

नहीं, उस बार हमने वह हादसा होने से बचा लिया।

फिर सचमुच ब्याह हो गया?

कानून के मुताबिक तो सचमुच हो गया, पर जिन्दगी के मुताबिक

अभी नहीं हुआ। वह कागज पर दस्तखत कर-कराकर अपने घर चली गई···।

पर कानून के अनुसार तो उसका 'अपना घर' अब वह है जो आपका है···।

अगर वह हो जाता तो मैं अपने-आपको ब्याहा हुआ मानता···।

वह अभी तक अपनी मां के घर है?

सिर्फ वहां रहती ही नहीं···अभी तक उसने मां को बताया भी नहीं है। जिस दिन उसमें मां को बताने का साहस आ जाएगा, उस दिन मैं ब्याहे लोगों में शुमार हो जाऊंगा···।

सो, सिर्फ आप ही नहीं, कानून भी उसके साहस का मोहताज है···।

हम दुनिया की बाजी जीत लें···अगर वह पान की एक दुक्की भी लगा दे!

फिर जिससे मुहब्बत की, उसकी साइकॉलोजी क्या समझी ?

अमृता ! मैंने एक ही बात समझी है कि मैं उससे मुहब्बत करती हूं—मेरी साइकॉलोजी एक ही है कि मैं उसकी बीवी हूं, और वह मेरा खाविंद है।

पर दोस्त ! मैंने तुम्हारी नहीं, उसकी साइकॉलोजी के बारे में पूछा है।

उसकी साइकॉलोजी ?—उसकी जिन्दगी में अनगिनत औरतें आईं और चली गईं। मेरा खयाल है—मुझे भी उसने शायद उनमें से ही एक समझा था—उन अनेक जैसी एक। उसे पता नहीं था कि मेरी मुहब्बत एक जन्म से एक भी पल कम नहीं कबूल करेगी…।

पर इस जन्म का बना क्या ? मैंने सुना है कि वह आज तक तुम्हें अपने घर लेकर नहीं गया, न उसने समाज के सामने तुम्हें अपनी बीवी माना है। हमारी पुरातन संस्कृति में किसी विद्वान् से जब कोई विद्यार्थी विद्या ग्रहण करने के लिए आता था, वह विद्वान् गुरु उसकी पात्रता देखता था कि वह विद्या ग्रहण करने योग्य है या नहीं। किसी कुपात्र को वह अपनी विद्या देने से इनकार कर देता था। यहां तो रूह की सारी सौगात का और जिन्दगी के सारे बरसों का सवाल था, क्या तुम्हें उसकी पात्रता या कुपात्रता नहीं देखनी चाहिए थी ?

अमृता ! इश्क की आंखों पर शुरू से ही एक पट्टी बंधी हुई होती है, उससे महबूब की पात्रता या कुपात्रता कहां देखी जाती है ?

नहीं दोस्त ! मैं इश्क की मुंदी आंखों में नहीं, खुली आंखों में यकीन करती हूं। सिर्फ आंखों में नहीं, उसकी नजर में भी। सिर्फ नजर में नहीं, नुक्ता-नजर में भी।

फिर अमृता ! यह समझ लो कि आंखें खोलकर भी अपने महबूब से

'कुपात्र' लफ्ज नहीं जोड़ा जा सकता ।

मैं तुमसे सहमत नहीं । पर इस समय सिर्फ तुम्हारा नजरिया जानना चाहती हूं । इसलिए यह बताओ कि तुमसे मुहब्बत करने के बाद उसने तुम्हारी चोरी से किसी और लड़की से ब्याह कैसे कर लिया ?

असल मे मुहब्बत मैंने की है—मेरी मुहब्बत मेरे आगे जवाबदेह है, उसकी मुहब्बत जवाबदेह नही है । जिस दिन मुझे पता लगा था कि उसका ब्याह हो गया है, मैं बिलकुल कुआरी थी, पर सोच लिया था कि आज से मैं विधवा हो गई हूं···।

फिर विधवा से सुहागन कैसे हुईं ?

वह ब्याह करवाकर मेरे आगे रोने के लिए आ गया था । मैंने कई दिन तक घर के दरवाजे बन्द करके रखे, पर उसने फिर अपने जादू से मेरे घर के दरवाजे भी खोल लिए और मेरे दिल के भी । मेरे पिता बड़े सख्त-तबीयत थे—वह बन्दूक निकालकर बैठ गए कि अगर अब वह मेरे घर की दहलीज लांघेगा तो मैं उसे गोली से मार दूगा । मैं भी सोचती थी कि मैं उसकी रखैल बनकर नहीं जीऊंगी, उसकी बीवी कहलाकर जीऊंगी । इसलिए उसने एक दिन मुझे मन्दिर मे ले जाकर बाकायदा ब्याह की रस्म कर ली···।

फिर समाज के सामने वह तुम्हें अपनी बीवी क्यों नहीं कहता ?

अमृता ! सच पूछो तो यह बात उससे पूछना भी मुझे अपनी हतक लगती है । मैं सरकारी और कानूनी कागजो पर उसकी बीवी के तौर पर ही दस्तखत करती हूं, क्योंकि मैं अपने-आपको उसकी बीवी समझती हूं । मैंने नजर उठाकर सारी उम्र किसी और मर्द की तरफ नही देखा । पर वह क्या सोचता-समझता है, इससे मेरा वास्ता नही है ।

पर भली औरत ! क्या यह एकतर्फा मुहब्बत को एक सख्त जिद नहीं है ?

अमृता ! अगर यह निरी जिद होती, सारी उम्र न निभती। जिदें टूट जाती हैं। यह सब कुछ मेरी सहज अवस्था हो गया है।

कोई साधारण और पुराने संस्कारों में पली हुई औरत अपने-आपको सती के रूप में देखना चाहती तो उसका मनोविज्ञान मैं समझ सकती थी। पर तुम्हारे जैसी तालीम-याफ्ता औरत एक मर्द की हजार कमियों को देखकर भी नहीं देखती—यह मेरी समझ के बाहर है···।

जहां तक उसकी कमियों का सवाल है—वह मैं उसके मुंह पर भी कह देती हूं। एक दिन उसने कहा, "जी करता है, अब मर जाऊं,"—मैंने कहा, "एक बढ़िया इंसान सिर्फ एक ही मौत मरता है, पर तुम्हारे जैसा आदमी, जो रोज किसी मौत मरता है, उसे एक और मौत क्या फर्क डालेगी ?"

फिर दोस्त ! यह बात बताओ कि जिस इंसान को इतनी इखलाकी मौतें मरते देखा हो, उसे दिल-दिमाग में कौन-सी जगह पर महबूब सोचा जा सकता है ?

अमृता ! यही मैं खुद नहीं समझ सकी। एक बात मैं और नहीं समझ सकी कि मुझमें किसी जगह ऐसी जालिम औरत है कि अगर 'उसे' कोई काटकर उसके जख्मों पर नमक छिड़कता हो तो फिर भी मैं सी न करूं। पर मेरे ही अन्दर एक ऐसी औरत है कि अगर 'उसकी' हथेली में छोटा-सा कांटा भी चुभ जाए तो मैं चीख पड़ूं। मैं उसके लिए अपनी जान भी दे सकती हूं।

आज फ्रायड या जुंग जिन्दा होता तो मैं अपनी जगह उनमें से किसीको तुम्हारे साथ बातें करने के लिए कहती। मुहब्बत और नफरत का दोहरा रिश्ता मेरे फलसफे की हद में नहीं आता। खैर, तुम्हारे इश्क की यह दीवानगी तुम्हारे महबूब को मुबारक ! पर मेरा खयाल है, उसके लिए 'तुम्हारा महबूब' लफ्ज की जगह 'तुम्हारा पति' लफ्ज बरतना ज्यादा ठीक रहेगा, क्योंकि तुम्हारी

तसल्ली उस लफ्ज में है···अच्छा, एक बड़े दुनियावी-से सवाल का जवाब भी दे डालो कि तुम्हारे उस पति ने तुम्हारी दुनियावी जरूरतों की कभी कोई फिक्र की है ?

कभी नहीं। उसने भी कभी नहीं पूछा-मांगा, और मेरे मन में भी एक जिद है कि जब तक वह मुझे समाज के सामने अपनी पत्नी नहीं कबूल करता, मैं उसकी कमाई हथेली पर नहीं रखूंगी, वह मेरा हक नहीं होगी, हराम की कमाई होगी। मैं अपनी रूखी-सूखी रोटी खुद कमाती हूं।

पर वह अब तक तुमसे मिलने के लिए आता है, या दूर हो तो खत लिखता है ?

उसने मुझे छोड़ा कभी नहीं। मिलता भी है, खत भी लिखता है। उसके खत मैंने सभालकर रखे हुए हैं। एक ही हसरत है—मैं मर जाऊं तो कोई उसके खत मेरे साथ ही मेरी कब्र में रख दे।

पर हिन्दू औरत की कब्र नहीं होती···।

मुझे लाश की शक्ल में भी आग में जलना अच्छा नहीं लगता, इसलिए मैंने अपने बहन-भाइयों से कहा हुआ है कि मुझे मिट्टी में दफनाया जाए···।

और वह खत ?

वह मैं ईश्वर को दिखाऊंगी, और कहूंगी—ईश्वर ! मेरे हाल के महरम, तुम···।

दो हाथों के कर्म

मनमोहनजी ! जंग की पहली भयानकता आपने पहली वार कौन-से साल में देखी थी ?

१९६५ में, हिन्द-पाक की पहली जंग के समय, जो कच्छ से शुरू हुई थी।

हवाई फौज के अफसर के तौर पर उस समय आपने जंग में कैसे हिस्सा लिया था ?

उस समय लड़ाई के मैदान में आर्मी की सप्लाई लाइन को हवाई जहाजों के जरिये कायम रखने में मेरी भी ड्यूटी लगी थी। इस ड्यूटी का एक हिस्सा यह भी था कि लड़ाई के मैदान में जो घायल होते थे, उन्हें वापस लाना होता था।

लाशों को भी ?

हां, लाशों को भी। उनको भी, जो लड़ाई के मैदान में काम आ चुके होते थे, और उनको भी, जो घायल दशा में आधे रास्ते पहुंचकर दम तोड़ देते थे।

मनमोहनजी ! इतना खून, इतने जख्म, इतनी लाशें आंखों से देखकर, हाथों से छूकर, उनकी चीखें रूह पर, बदन पर झेलकर— मुहब्बत का फलसफा आपकी नजर में क्या होता है ? उसकी नाजुक खयाली कितनी कुछ बची रह जाती है ?

नंगे पैरों भागकर दरवाजा खोलने का जतन न करती हो...।

यह इंसान में मुहब्बत की शाश्वत प्यास की तशरीह है, खूबसूरत है। पर, मनमोहनजी! कैसी कशिश को आप मुहब्बत का नाम देना चाहेंगे? मेरा मतलब है—कशिश औरत के हुस्न की भी हो सकती है, जवानी की भी, उसकी मानसिक अमीरी की भी, या जिस्मानी जरूरत की भी...?

इसका जवाब मैं अपनी लिखी चार पंक्तियों में देना चाहूंगा:

प्यार, एक-दूसरे को छूकर जन्मी चकमक की चिनगारी ही नहीं
प्यार, एक-दूसरे के लिए तरसकर फटे हुए होंठों की दरार
में बैठकर
उम्र भर लम्बी इन्तजार करना भी है...
और यह एक गाला-सा है हवा में तैरता हुआ...
जो कभी-कभी, किसी-किसी, दीवार-आंगन में ठहरता
अगर आ बैठे तुम्हारे पास—सुन ले चुप-चुप तुम्हारे बोल
तो इस भरपूर सच से इनकार करना
दहलीज पर आए हुए सच को दी जाने वाली दुत्कार भी है
प्यार—एक विस्तार है, विस्माद[1] है, मिकदार नहीं है।

सो, कह सकती हूं—आप एक हाथ में बन्दूक या बम उठाकर भी दूसरा हाथ किसी फूल के लिए सलामत रख सके हैं।

साथ ही यह कह सकता हूं कि अगर एक हाथ वाला मेरा फूल किसी तेज हवा के झोंके से उड़ने लगे तो मेरा दूसरा हाथ चौंककर हाथ से बन्दूक भी फेंक देगा...।

---

१. खुमारी

मुहब्बत से खौफजदा एक लड़का

राहुल ! तुमने योगसाधना भी की है और होमो होने का अनुभव भी। इसलिए ऐसे नाजुक सवाल का जवाब देने की क्षमता तुममें है। मैं मुहब्बत के बारे में तुम्हारा सहज और स्वाभाविक नजरिया जानना चाहती हूं।

मेरे खयाल में मुहब्बत दो इंसानों की एक-दूसरे के लिए एक-सी जरूरत का नाम है।

औरत और मर्द की ? या दो औरतों की'' या दो मर्दों की ?

कोई फर्क नहीं है।

औरत और मर्द का रिश्ता कुदरती है। क्या दो मर्दों का रिश्ता गैर-कुदरती नहीं ?

नहीं, इंसान की दो श्रेणियां होती है—एक औरत जाति, एक मर्द जाति। मेरे खयाल में दो श्रेणियों के बीच यह रिश्ता उतना स्वाभाविक नहीं है जितना अपनी श्रेणी के दो जनों में।

मैं इससे सहमत नहीं, पर तुम अपने विचार को जरा विस्तार से बताओ।

मेरे खयाल में एक मर्द की आइडेंटीफिकेशन बिलकुल अलग और विपरीत नजरियेवाली दूसरी श्रेणी से, यानी औरत से उतनी, नहीं हो

सकती, जितनी किसी मर्द से यानी अपनी श्रेणी से। यह एक तरह से ब्रदरहुड का एहसास होता है, भ्रातृ-भाव का।

पर इस एहसास का अस्तित्व क्या एक खौफ में से नहीं पैदा होता? मर्द को औरत का खौफ···और औरत को मर्द का खौफ?

कई हालतों में शायद यह भी सच होगा, पर इसकी बुनियाद बच्चे और मां की हालत में हो सकती है, एक औरत और मर्द होने की हालत में नहीं।

पर मर्द के अचेत मन में शायद वही बच्चा हो, जो हर औरत में मां की परछाईं देखता हो··?

यह हो सकता है, पर अगर वह बच्चा अपनी मां का इकलौता बेटा हो तब अगर उसकी बहन भी हो, तो उसका साया, मां वाले साये को तोड़ देता है।

पर दोनों रिश्तों में जिस्मानी रिश्ता वर्जित है, इसलिए क्या यह नहीं हो सकता कि एक का साया दूसरे के साये को तोड़ने की बजाय उसके साथ जुड़कर और गाढ़ा हो जाए? और मर्द उस गहरे साये से बचने के लिए···सारी औरत जाति से बचना शुरू कर दे?

यह हो सकता है···अगर मर्द अपने होमोवाले रिश्ते में औरत की जगह ले, मर्द की नहीं।

चलो मान लिया। पर इस हालत में दूसरा मर्द तो औरत की जगह लेता होगा, फिर ब्रदरहुड वाला फलसफा कैसे ठीक हुआ?

ऐसा मैंने इस पहलू से कहा था कि दो मर्द आपस में कई ऐसी बातें निडर होकर कर सकते हैं, जो एक मर्द एक औरत के साथ नहीं कर सकता।

तुमने 'निडर लफ्ज' बरता है, जिसकी बुनियाद जरूर किसी अचेत

डर में है। मैं इस डर को जानना चाहती हूं।

उस अचेत डर की बुनियाद पूरे सामाजिक [illegible]
औरत से मर्द के जिस्मानी संबंधों को [illegible]
पर एक भयानक त्योरी आ जाती है, [illegible]
तौर पर ब्याह न करें। यह लौट [illegible]
होता है।

तो योगसाधना भी की है, साधना के बल से तुम परिचित हो, फिर अचेत मन की शक्ति को साथ लेने की जगह इससे डरते क्यों हो ?

मैंने रिश्तों की पकड़ और रिश्तों के खौफ को ही समझने के लिए योग-साधना की। मैं छः वरस का था जब मुझे होस्टल में डाल दिया गया था। पिता की ओर से सुरक्षा का एहसास भी मिलता था, पर वह जब गुस्से में आकर सारे घर में एक खौफ फैला देते थे, मैं डरकर मां से चिपट जाता था। फिर मां और बाप भी एक-दूसरे से अलग हो गए। मेरे 'मैं' की जड़ें कहां हैं, यह जानने के लिए भी मैंने योगसाधना की। होस्टल में मुझसे वड़ा एक लड़का था, जिसने पैसे और मिठाइयां दे-देकर मेरा दिल अपनी ओर खींच लिया। फिर उसने ही मुझे सिगरेट पीना सिखाया, और यौन-विषय पर कई किताबें पढ़ने को दीं।

फिर तुम यह नहीं सोचते कि तुम्हारी 'होमो' की रुचि के पीछे कई मनोवैज्ञानिक कारण हैं ?

मेरा जव भी किसी लड़की की ओर ध्यान हुआ, वड़े भावुक पहलू से हुआ''पर तव ही मुझे गुनाह का एहसास करवाया गया, जैसे मैं उसका नाजायज फायदा उठा रहा हूं। मेरी भी कच्ची उमर थी। कई वातें दिल को लग गईं।

पर अव तुम्हारा ज्ञान वहुत विस्तृत है। मानसिक ग्रंथियों को तुम पोरों से खोल सकते हो। अव तुम्हारा किसी औरत से मुहब्बत के वारे में क्या नजरिया है ?

होमोसैक्सुएलिटी वाला दौर गुजर चुका है ! मैंने दो लड़कियों से मुहब्वत भी की थी, पर आर्थिक तौर पर अभी मैं स्वतंत्र नहीं हूं। इसलिए हर एहसास सिर्फ एहसास के स्तर पर ही रह जाता है। किसी लड़की को मैं कव्जे की शक्ल में नहीं पाना चाहता, इसलिए कभी व्याह करने की नहीं सोचता।

पर मुहव्वत और व्याह को कव्जे की शक्ल में सोचना भी क्या मानसिक उलझन नहीं है ? मुहव्वत किसी की स्वतंत्रता को छीन

लेनेवाली कोई हाकिम-भावना नहीं होती, बल्कि उसके बदले और आकाश की ओर बिल्कुल बरनेवाला [illegible] होती है, वहीं [illegible]

मुहब्बत अपने-आपमें हसीन जज़्बा है, पर ज्यादा इस जज़्बे को [illegible] बदल देता है, वह तन-मन का हाकिम हो जाता है और उसके हुक्म का उल्लंघन अगर कर दो तो तुम गुनहगार हो जाते हो

पर वफा की तसरीह जब [illegible] है। [illegible] जाती है, और जब वफा की [illegible] वफा मन की एक सहज अवस्था होती है। [illegible] भी सहज हो जाती है।

यह मैं जरूर मानता हूं कि [illegible] सहज रूप में आएगी, [illegible] और उसे अपनी रूह का [illegible]

एक अनब्याहा मर्द

मेहता साहब ! शे'रो-शायरी अक्सर आपकी जुबान पर होती है। आपके रोजगार का सिलसिला भी ऐसा है कि आपने पूरी दुनिया घूमी है···पर आपने न ब्याह किया है, न मुहब्बत···इस मनोविज्ञान को समझना चाहती हूं।

अमृताजी ! मैंने सचमुच पूरी दुनिया घूमी है···यही नहीं, मैंने तीन बरस यू० एन० ओ० की नौकरी भी की है—इंटरनेशनल कमीशन की। यह डिप्लोमैटिक नौकरी थी, मैं लड़ाई के दौरान कोई तीन बरस इंडो-चाइना में रहा था। सिर्फ जिन्दगी के नहीं, धरती के दुःख-सुख बहुत करीब से देखे हैं। इनकलाब भी देखे, हुकूमतें बदलते भी···और लोगों की लाशों से पटे हुए मैदान भी। लोगों के दिलों में उतरकर प्यार और मुहब्बत भी देखी। वहां मुहब्बत का एक और रंग भी देखा···जो किसी भी लंबी लड़ाई के दिनों में सुहागिनों का सुहाग उजड़ने के नतीजे में दिखाई देता है। आम बाजारों में जवान-जहान लड़कियों की आबरू बिकती हुई भी देखी···।

क्या यह जंगों की भयावहता थी, जिसने आपका मुहब्बत का नजरिया बदल दिया ?

नहीं। वहां सिर्फ मुहब्बत का भयानक रंग देखा···मुहब्बत का अकथ दर्द···उसके साथ यह महसूस किया कि कभी ब्याह नहीं कर सकूंगा।

दीवानगी की शिला

"हम उन बेंचो पर कैसे बैठ सकते है जिनपर झूठ ही झूठ बैठते है"—यह लिखने वाला अमरसिंह आनन्द सचमुच झूठ के बेंच पर कभी नहीं बैठा था, पर एकतर्फा मुहब्बत की दीवानगी की शिला पर इस तरह जा बैठा कि फिर वहा से नहीं उठ सका। शायरी अमरसिंह की रूह मे जरूर थी, पर कलम मे उतरना अभी उसकी शायरी को नसीब नहीं हुआ था कि जिन्दगी के बाकी दिन उसने अपने हाथो मौत की खाई मे बहा दिए…।

यह शायद वह भी जानता था कि उसका तन उसकी प्यार मे भीगी रूह के साथ पर पूरा नहीं उतर सकता था, पर वह अपने एकतर्फा प्यार की वास्तविकता को स्वीकार करने मे असमर्थ था। यह प्यार शुरू से एकतर्फा था, या समय पाकर एकतर्फा हो गया था, यह चर्चा अर्थहीन हो जाती है जब अन्तिम वास्तविकता एकाकीपन और एकतर्फा दीवानगी बन जाए।

वास्तविकता सिर्फ यह है कि अमरसिंह अपनी रूह के पके हुए फल के भार से टहनियो समेत टूट गया, जडो समेत टूट गया।

उसके आत्मघात की घटना पर उसके 'कई मित्रो' ने स्कैंडल्स लेख लिखे। सिर्फ डाक्टर हरिभजनसिंह ने बडा सन्तुलित और गभीर लेख लिखा था, जिसकी कुछ पक्तिया थीं—'वह बालनाथ के किसी ऐसे चेले के समान था जिसने अपनी हीर के प्रथम दर्शन मे भी पहले कान फडवाकर बाले पहन लिए हो।'

कसक कलेजे मांहि
(एक वैद्य-सुवैद्य से बातचीत)

हरीसिंहजी ! आप मर्ज की पहचान के लिए मरीज की मानसिक उलझनों की तह तक जाते हैं। उसकी जिन्दगी के इतिहास का एक-एक पृष्ठ छानते हैं। पर हम शायर लोग, केवल हम ही नहीं हैं, हमारे पीर-पैगम्बर भी आपको 'भोला वैद' कहकर छोड देते हैं कि आपको कलेजे की कसक का क्या पता अच्छा, आप बताइए कि मुहब्बत के मरीजों की कसक आप पहचान सकते हैं ?

हमारे पास मुहब्बत के मरीज तब आते हैं जब गहरे तौर पर घायल हो चुके होते हैं। आते ही असली बात को बयान नहीं करते—सिर्फ शारीरिक लक्षणों की बातें करते हैं। इस तरह के मरीजों की दो श्रेणियां बनाई जा सकती हैं—एक वह, जो जिन्दगी से बिलकुल विरक्त-से हो जाते हैं—यह वह होते हैं जिन्होंने सारी घटना और सारी पीडा सभालकर रखी हुई होती है—और उनसे इतना गहरा संबंध पाल लिया होता है कि बाहरी दुनिया की हर चीज से बे-वास्ता महसूस करते हैं। और दूसरी श्रेणी के वह होते हैं—जो स्वभाव से अंतर्मुखी नहीं होते। उनके पैरों में कुछ सहज भी होता है, पर वह ऐसी हालतों में पड चुके होते हैं कि भीतर की ताकत से भी इनकारी नहीं हो सकते और बाहर की ताकतों से समझौता भी करना होता है।

मरीज आपको अपने मन का महरम बनाते हैं ?

जरूर बनाते हैं—अगर डाक्टरों के पास मरीज के लिए पूरा वक्त भी हो···उन्हें इंसानी दर्द की पहचान भी हो···।

इस करीबी रिश्ते में—अगर यह रिश्ता बन जाए तब—कई मरीजों के लिए डाक्टर अपने ही महबूब का सब्स्टीच्यूट नहीं बन जाता ?

जरूर बन जाता है। अक्सर बन जाता है। इसका सबसे बड़ा कारण होता है—डाक्टर का, मरीज के दिल की बात को ध्यान और हमदर्दी से सुनना। यही बात मरीज को अपने महबूब से नहीं मिली होती। और इसीलिए डाक्टर न केवल महबूब का सब्स्टीच्यूट बन जाता है, बल्कि उससे भी ज्यादा—एक आइडियल मर्द हो जाता है।

जिस तरह कई बार कासिद महबूब की जगह ले लेता है, फिर इस हालत में आप क्या करते हैं ?

यह हालत सचमुच चैलेंजिंग हो जाती है। अगर डाक्टर कुछ लापरवाही बरते तो मरीज का विश्वास टूट जाता है, वह नीरोग नहीं हो सकता, उसी पुरानी उदासी में फिर उतर जाता है। और अगर डाक्टर पूरा ध्यान और समय दिए जाता है, तो बन्धन और दृढ़ होता जाता है—जिसकी गाँठें खोल सकने के लिए बहुत कुशलता की जरूरत होती है।

यह बात मैंने मनोविज्ञान के एक विशेषज्ञ डाक्टर से पूछी थी। उन्होंने भी विस्तार से इसी कठिनाई का जिक्र किया था। पर उन्होंने इसका हल वह फीस बताई जो घंटे भर की बातचीत के बाद मरीज को देनी पड़ती है। वह रकम, मरीज को फिर मरीज वाली हकीकत पर ले आती है।

इस बात से मैं सहमत हूं। लेकिन मुझ जैसे डाक्टर, जो सरकारी अस्पतालों में हैं, उनके लिए बचाव का यह साधन भी नहीं है। हमें मरीज से पैसे नहीं लेने होते इसलिए हमें और भी एहतियात बरतनी पड़ती है कि सारे दौर में मरीज, मरीज ही महसूस करे···।

हमारे मीरन शायर का शे'र है—"ते-ताप फिराक का फुक चढ़या'''"[1] आप लहू की परख करके हर तरह के ताप का विवरण जान लेते हैं, लेकिन फिराक के ताप को कैसे पहचानते हैं ?

इस ताप का राज बहुत हौले-हौले खुलता है। पहले न मरीज इसका जिक्र करता है, न उसके सगे-संबंधी। पर जब हौले-हौले मरीज का विश्वास बंधता है—वह खुद ही कुछ इशारे-से दे देता है। फिर दूसरी अलामतें बे-मानी हो जाती हैं—और उसी हिसाब से दवाएं बदल जाती हैं'''।

पर जो यह मानकर बैठे हुए होते हैं—"लाम ला-इलाज है इश्क होता"—उनका क्या करते हैं ?

असल में होम्योपैथिक इलाज में ऐसी दवाएं भी हैं जिनका संबंध मानसिक दशाओं से होता है। मरीज अपनी बीमारी को भले ही बड़ी जिद से पालना चाहे; उसे अपनी पनाह समझे, हमारे पास ऐसी दवाएं भी हैं जिनसे उसका मानसिक दृष्टिकोण बदला जा सकता है।

जो इश्क की नाकामी से आत्महत्या करना चाह रहे हों ?

उनके लिए बहुत अच्छी दवाएं हैं। वह भी दो तरह के मरीज होते हैं—एक, जो सिर्फ सोचते रहते है, पर कभी मरने की हिम्मत नहीं करते। एक वह, जो दो-चार बार ऐसा प्रयत्न कर चुके हैं—पर मरे नहीं। ऐसी हालतों में हम मरीज के परिवेश को बड़ी हद तक स्वाभाविक बनाने की कोशिश करते है। उनके रिश्तेदारों को बुलाकर रिश्ते को मजबूत करने की कोशिश करते हैं। कई बार मरीज के घर जाकर भी उन हालतों पर गौर करते हैं जो मरीज के लिए खामख्वाह अस्वाभाविक बन गई होती है। मसलन—घर के लोगों का यह रवैया कि मरीज से अमुक बात न की जाए, अमुक जिक्र न छेड़ा जाए। अक्सर मेरी कोशिश होती है कि मरीज के मन के बन्द कमरे में कुछ स्वाभाविक खिड़कियां खुल सकें—वह कुछ बोल सके, कुछ कह सके। जो कुछ उसके अंदर की तहों में पड़ा हुआ है, वह जबान पर आ सके। वह [illegible]

---
1. विरह का ताप बहुत जोर से चढ़ा।

सके।" मैं समझता हूं कि यह इश्क होता ही नहीं, जो किसीको मरीज बना दे। इश्क ताकत होता है, कमजोरी नहीं। जो चीज लोगों को मरीज बनाती है, वह वक्ती लगाव होते हैं। और जिन्हें होते हैं—उन्हें न खुद की पहचान होती है, न उनकी, जिनकी ओर वह आकर्षित होते हैं।

एक वनजारन

तेरा नाम क्या है बनजारन ?

मेरा नाम तुलसी. काम से वनजारन वहेलिया, कई शिकारिन वहेलिया भी कहते हैं। और मा, तुम्हारा नाम ?

मैं भी बनजारन हूं···पर मैं बनजारन राम की···।

मैं शिव की पुजारिन हू मा ! तुम शिव-शक्ति की पूजा के लिए रुद्राक्ष की माला खरीदोगी ?

तुलसी, मैं कलम की पुजारिन हूं। शब्दों की शक्ति जानती हूं। पर तेरी यह रुद्राक्ष की माला जरूर देखूंगी। इसके गुण तो बता··
पर यह बता, तुझे रुद्र का अर्थ आता है ?

यह शिव के वृक्ष का फल होता है···।

हां तुलसी ! यह एक वृक्ष का फल होता है, जिसकी शक्ल रुद्र की आंख जैसी होती है। पर रुद्र का अर्थ होता है—रोने वाला। ब्रह्मा के माथे से जो पुत्र पैदा हुआ था, वह जन्म लेते ही रोने लगा। इसलिए उसका नाम रुद्र पड़ गया।

नहीं मा ! यह शिवजी महाराज का नाम है।

हां तुलसी ! बाद में उसी रोने वाले बच्चे के सात नाम पड़े—सरव, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव। पुराणों में सात की जगह ग्यारह नाम लिखे हुए हैं···।

मां, तुम इतना जानती हो तो फिर यह भी जानती होगी कि रुद्र एकमुखी भी होता है, दोमुखी भी···।

यह तू बता—विस्तार के साथ।

एकमुखी—सदा सुखी। दोमुखी—शंकर-पार्वती का जोड़ा। तीनमुखी—ब्रह्मा, विष्णु, महेश की मूर्ति। चारमुखी—चौरासी, जो हर राशि वाले को फलता है।

सो, रुद्र फल चार तरह का होता है ?

नहीं, पांच तरह का। पांच-मुखी—परमेश्वर मां ! माया मिलती है, पर काया नहीं मिलती। काया सुखी रहे, इसलिए रुद्राक्ष की माला पहननी होती है, चाहे एक दाना···और अगर तीनमुखी दाना पहने तो जो मांगे, वही पाए। चारमुखी दाना—चारों रिद्धियां, चारों सिद्धियां ले आए। पांचमुखी तो स्वयं परमेश्वर। और मां ! अगर कोई औरत मायाजाल बरते···।

मायाजाल ! वह क्या होता है ?

मां, यह देख, दानोंवाली बूटी। जिसको शनिवार को बासी पानी में डालकर, इतवार को पीसकर, घोलकर अगर कोई औरत अपने मर्द को दूध में मिलाकर पिला दे, तो वह मर्द सारी उम्र उसीको प्यार करे। वह और कहीं नहीं जाए, परायी औरत को आंख उठाकर न देखे। औरत जिस मर्द को चाहे, उसीको पाए। अगर मर्द दूर हो, तो इस बूटी का पानी उसके कपड़ों पर छिड़क दे, या रूमाल पर छिड़ककर उसे रूमाल भेजे।

इस बूटी का नाम क्या होता है ?

इस बूटी का नाम ही मायाजाल होता है। यह सिर्फ हरिद्वार में उगती

है—ट्र की पीढ़ी पर।

तुलसी ! तू जब बड़ी जवान थी, तूने किसीसे मुहब्बत की होगी ?

हा मा ! की थी। यही मायाजाल उसके कपड़ों पर छिड़रा, तो उसने मेरे साथ ब्याह किया। अब तो उसके दो बेटे जन चुकी हू···तू इस बूटी का गुण आजमाकर देख !

मैंने इस बूटी का गुण आजमाकर देखा हुआ है···इस बूटी का नहीं, इस जैसी एक और बूटी का।

और कौन-सी बूटी ?

वह तू न समझेगी। उसके लिए कागज के ऊपर कलम को घिसना होता है···और उसमें अमल का पानी निकालकर तन-मन के ऊपर छिड़कना होता है। पर वनजारन ! मैंने तेरा बड़ा वक्त लिया है। बोल, तेरे वक्त का क्या मोल दूं ?

मेरे पाच दाने खरीद ले—एकमुखी, दोमुखी, तीनमुखी···!

अच्छा तुलसी ! विश्वास तेरा—पैसे मेरे···!

हस्तरेखा-विशेषज्ञ : उर्मिल शर्मा

आप लोग, जो हस्तरेखा के माहिर होते हैं, हमारे रोजे-अजल वाले निकाह की कोई रेखा हमारे हाथों पर पढ़ सकते हैं ?

हां, पढ़ी जा सकती है । हाथ पर जिसे विवाह-रेखा माना जाता है, उसका किसी रस्म से कोई वास्ता नहीं होता । वही मुहब्बत-रेखा होती है । पूरब के कई ज्योतिषी उसका संबंध केवल विवाह की रस्म से मानते हैं, पर पच्छिम वाले नहीं मानते । मैं भी नहीं मानती । इस रेखा का संबंध 'विवाह' से नहीं होता, न केवल औरत और मर्द की मुहब्बत से । यह रेखा मानसिक दशा की सूचक है ।

मतलब कि यह चिह्न इश्के-मिजाजी के वास्ते भी उतना ही सही होता है, जितना इश्के-हकीके के वास्ते ?

बिल्कुल ! साथ ही यह भी कहना चाहूंगी कि इस लंबी लकीर के साथ कई बार एक-दो छोटी लकीरें भी होती हैं । आमतौर पर बड़ी लकीर को विवाह की लकीर कहा जाता है और छोटी लकीरों को सगाइयां छूटने की लकीरें, पर यह ऐसा नहीं है । बड़ी लकीर पूरी आयु जितनी लंबी मुहब्बत का चिह्न होती है···और छोटी लकीरें सिर्फ रास्ता चलते लगाव की हैं । कई बार सफर में मिलने वाले लोग अच्छे लगने लगते हैं, कुछ देर के लिए ध्यान भी आकर्षित करते हैं—ये छोटी लकीरें ऐसी ही घटनाओं का चिह्न होती हैं ।

अच्छा, हीजड़ों के हाथों पर ऐसी लकीरों के संबंध में मुहब्बत के क्या अर्थ हो सकते हैं ?

एक हीजड़े के हाथ पर यह लकीर देखकर मैंने उससे यही सवाल पूछा था। उसने बताया कि जिसे मैंने गुरु माना हुआ है, उससे इतनी मुहब्बत करता हू कि उसकी खातिर जान भी दे सकता हू। सो, यह रेखा किसी के प्रति प्रबल भावनाओं की सूचक होती है।

अच्छा, यह बताइए कि इस लकीर से वफा या बेवफाई का भी कोई पता लग सकता है ?

जरूर लग सकता है। इसके साथ हृदय-रेखा को भी देखना होता है। मुहब्बत का सीधा संबंध दिल से होता है। हृदय-रेखा अगर सीधी और गहरी हो, उसमें कोई कटाव न हो, न कोई ग्रंथि हो, न कोई द्वीप, या लंबा और बंद टापू-सा, तो उस हाथ का मालिक भावुक नहीं होता। वह दिल के एहसासों को कोई महत्त्व नहीं देता। इसलिए वह मुहब्बत नहीं कर सकता।

अच्छा, जिस मुहब्बत में जिस्म शामिल नहीं होता, सिर्फ एक रूहानी अवस्था होती है, और दूसरी ओर जिस मुहब्बत में तन-मन एक हो जाता है, आप उसका अंतर कैसे देखती हैं ?

उसके लिए हम हाथ का शुक्र-क्षेत्र भी देखते हैं, वीनस या माउंट—वह अगर भरा हुआ, उभरा हुआ हो, साफ-सुथरा हो तो इसका अर्थ है कि उस इंसान की मुहब्बत में मन के साथ तन भी शामिल है। पर जिसके हाथ का शुक्र क्षेत्र उभरा हुआ न हो, और उसकी जगह चंद्र-क्षेत्र उभरा हुआ हो तो इसका अर्थ होता है कि उस इंसान का सारा चिंतन सिर्फ मानसिक चिंतन है—कोरी कल्पना। उसे महबूब से कोई उत्तर नहीं मिलता।

आपने कभी किसी सख्त दिल आदमी का हाथ देखा है ? किसी चोर, डाकू या कातिल का, जो कुछ भी कर गुजरते हैं, पर उनके दिल में कहीं टीस भी नहीं उठती…?

एक वार रायवरेली जेल में जाकर मुझे एक डाकू का हाथ देखने का मौका मिला था। उसकी वह रेखा टूटी हुई थी जिसे विवाह-रेखा कहा जाता है। पर उसकी हृदय-रेखा वड़ी जज्वाती दिखाई देती थी। मैंने उससे सवाल किया कि तुम्हारी हृदय-रेखा के अनुसार तुम्हें एक जज्वाती इंसान होना चाहिए। तुम्हारा शुक्र-क्षेत्र भी अच्छा है। फिर तुम्हारे हाथ से सात-आठ कत्ल किस तरह हुए?—वह वताने लगा, "मैं वचपन से एक लड़की से प्यार करता था। जवान हुआ तो उससे व्याह कर लिया। वह मेरी सारी कल्पना पर छाई हुई थी। मैं फौज में था। इसलिए उससे दूर रहना पड़ता था। हमेशा उसकी तस्वीर अपने पास रखता था। पर मेरी गैरहाजरी में मेरे वड़े भाई ने उसके साथ संवंध जोड़ लिया। जव मैंने एक वार दोनों को एक ही विस्तर पर देखा, तो मैंने अपनी वीवी को भी कत्ल कर दिया, भाई को भी और भाई की वीवी को भी। फिर मेरा सारा नजरिया वदल गया···धंधा भी वदल गया।"

जो लोग मुहव्वत में दीवाने होकर, दूसरे को कत्ल करने की वजाय खुद को कत्ल कर लेते हैं···यानी आत्महत्या कर लेते हैं, उनके हाथ पर कैसी रेखा होती है?

अगर किसीकी मस्तक-रेखा और हृदय-रेखा, अपनी-अपनी जगह से हिल-कर, आपस में जुड़ गई हों तो उसका अर्थ होता है कि न उसका दिल अपनी जगह पर है, न उसकी विचारशक्ति। ऐसे व्यक्ति की अगर आयु-रेखा भी छोटी हो, तो वह जव आत्महत्या करता है, तो जहर खाकर या आग में जलकर। पर अगर उसकी जुड़ी हुई दोनों लकीरें शनि के क्षेत्र की ओर जा रही हों तो वह किसी हथियार से आत्महत्या करता है।

पर कई दीवाने आत्मघात नहीं करते, जज्वाती तौर पर असंतुलित होकर पागल हो जाते हैं।

पागल होने वाले का चंद्र-क्षेत्र वड़ा उभरा हुआ होता है। साथ ही अगर उसकी मस्तक-रेखा पूरी गोलाई से विलकुल नीचे आ जाए, चंद्र-क्षेत्र पर और अगर उसकी हृदय-रेखा निरी गुच्छा-गुच्छा हो, तो वह व्यक्ति पागल हो

जाता है।

आपने कभी किसी सियासतदान का हाथ भी देखा है ? उन लोगों की जिन्दगी में जज्बात के लिए कोई जगह होती है या नहीं ?

मैंने पंडित नेहरू का हाथ देखा था। दो मौकों पर बहुत जजबाती हो जाने के संकेत थे—एक, कमला नेहरू की मौत के समय और दूसरा—सन् १९६२ में—चीन के हमले के समय।

हम शायर लोग जब यह भी जान जाते हैं कि महबूब का वस्ल (मिलन) हमारी किस्मत में नहीं है, तब भी तकदीर से टक्कर लेकर बैठ जाते हैं। हमारा एक उर्दू शायर कहता है—'मैं तसव्वुर भी जुदाई का कैसे करूं, मैंने किस्मत की लकीरों से चुराया है तुझे'—अपने इल्मे-कयाफा से बताएं कि किस्मत की लकीरों से अपने महबूब को चुरा लेने वाली बात मुमकिन हो सकती है या नहीं ?

हो सकती है, क्योंकि हम हर रेखा को कर्म-प्रधान मानते हैं। जिस व्यक्ति की इच्छा-शक्ति बहुत बलवान हो, मन बहुत निर्मल, पवित्र और व्यक्ति कर्मशील हो तो कुछ भी संभव हो सकता है।

एक औरत और तीन आदमकद शीशे

…! मेरे खत के जवाब में तुम मुझसे खुद मिलने आ गईं, इसके लिए शुक्रिया लफ्ज इस्तेमाल नहीं करूंगी।

मैंने जिन्दगी में तीन आदमकद शीशे देखे हैं—एक 'खुद' का शीशा, जिसमें मैंने अपने-आपको सिर से पैर तक देखा, माथे के चिंतन से लेकर और मन के सपनों से लेकर अपने पैरों की हिम्मत तक को देखा। दूसरा आदमकद शीशा, वह मर्द है, जिससे मैं मुहब्बत करती हूं, और तीसरा आदमकद शीशा, दुनिया की कुछ बढ़िया किताबें हैं जिनमें मैं अपने-आपको और अधिक पहचानती हूं। इस तीसरे किताबों वाले शीशे में आपकी किताब 'रसीदी टिकट' भी शामिल है।

मैं नहीं जानती थी कि जिस औरत को मैंने खत लिखा है, उसकी समझदारी और सयानापन मुझे भी हैरान कर देगा। यह तीन आदमकद शीशों वाली बात तुमने कब और कैसे पाई ?

आपको भी बताने की जरूरत पड़ेगी? यह आपकी अपनी फिलासफी है…।

है, पर मैंने इन लफ्जों में कहीं नहीं लिखी। वैसे मैंने यही बातें तुमसे करने के लिए तुम्हें खत लिखा था। तुम्हारे बारे में मैंने कुछ एक मॉडल लड़की से सुना था…

ली…से ? उसकी फोटोग्राफी का सारा काम मेरे स्टूडियो में होता है'।'

फोटोग्राफी के काम में कम लड़कियां हैं, हैं भी तो अखबारों के दफ्तरों में। कोई लड़की अपना स्टूडियो बनाकर काम नहीं करती।

असल में हमारे दो स्टूडियो है, एक कलर फोटोग्राफी का है, दूसरा ब्लैक एंड व्हाइट का। पहले एक ही था, पर जब मैंने काम सीख लिया तो यह ब्लैक एंड व्हाइट फोटोग्राफी वाला स्टूडियो मैं सभालती हूं, कलर वाला मेरा खाविंद।

ली…बता रही थी कि अपने इस महबूब को पाने के लिए तुमने घर और समाज की बहुत मुखालिफत सहन की थी…?

बडी काली मुखालिफत ! काले अधेरे जैसी। पर हर नेगेटिव सिर्फ डार्क-रूम में ही पाजिटिव बनता है।

पहले सामाजिक विवाह की कसी हुई गांठें कैसे खोलीं ?

बड़ा गलत ब्याह था। वे गाठें मैंने अपने हाथो मे नही डाली थीं, मेरे मा-बाप के भोले हाथों ने डाली थी। पर खोली मैने अपने दातो से।

बहुत मुश्किल समय था ?

दिल के लिए नही था, पर कानो के लिए बहुत मुश्किल समय था। जिन लफ्जों का मेरी रूह से और मेरे चिंतन से कोई वास्ता नही था, अपने लिए वह सब भयानक लफ्ज सुनने पडे। क्या-क्या सुना, वह मेरी जबान से नही निकल रहा है।

समाज की वह सारी शब्दावली जानती हूं। उसे तुम्हारी जबान से सुनना भी नहीं चाहती।

जिन लोगो से मैंने हाथ जोडकर विदा मागी, उनके घर का एक बुजुर्ग बरसों से बीमार था, उसकी मौत का इलजाम भी मेरे सिर पर लगा दिया गया कि मैं उसकी कातिल हूं। मेरे तलाक लेने की बात सुनकर उसकी सदमे से मौत हो गई है, इसलिए मेरे हाथों पर उसका खून लगा हुआ

है···।

अगर तुम्हें मुहब्बत लफ्ज की तशरीह करनी हो तो क्या कहोगी ?

मेरा सोचना बड़ा सीधा है। जिससे मिलकर मन ऊंचा हो जाए, तन पवित्र हो जाए, वही मुहब्बत है। इसलिए जिसे प्यार किया, उसे मैं एक आदमकद शीशा कहती हूं, जिसके सामने खड़े होकर मुझे अपना-आप बहुत अच्छा दिखाई दिया।

जिन्दगी में कोई कसक या पछतावा कभी नहीं आया ?

पछतावा कभी नहीं आया। एक छोटी-सी कसक है, पर वह मेरा और उसका आपसी फैसला था। हमने खुद अपने-आपसे इकरार किया था, इसलिए पूरा किया।

उसे मैं जान सकती हूं ?

उनके दिल में मेरे लिए या उस बढ़िया इंसान के लिए कोई गांठ न पड़ जाए, इसलिए अपनी नई जिन्दगी शुरू करते समय, मैंने और मेरे मर्द ने अपने-आपसे इकरार किया था कि हम कोई बच्चा नहीं पैदा करेंगे। मेरी यही बेटियां उसकी बेटियां रहेंगी।

एक बात कहूं, तुम कभी फिर मुझसे मिलने आओ तो अपने मर्द को भी साथ लाना। उस जैसे इंसान को देखने को जी करता है।

वह बहुत खुश होगा···।

तुम अपने उस फैसले के बारे में बता रही थीं···।

फैसले का पछतावा नहीं है। पर एक हसरत-सी है कि औरत जिसे प्यार करती है, उसके बच्चे को गोद में डालकर उसे कैसा लगता होगा, यह मैंने नहीं जाना है।

तुम्हारी रूह जितनी सुंदर है, वह बेटियों के प्रति तुम्हारे विश्वास को डोलने नहीं देगी।

वे बहुत छोटी हैं, मुझे पूरी तरह जानने के लिए उन्हें बहुत उम्र चाहिए। उनकी कच्ची उम्र में कुछ भी हो सकता था। उन्हें किसी कॉम्प्लेक्स से बचाने के लिए मुझे यह कीमत अदा करनी थी, की है। अगर कोई ईश्वर है तो उससे भी मुझे आज माफी मांगने की जरूरत नहीं है। पर एक चीज थी, जिसके सामने खड़े होकर मैंने उससे माफी मांगी थी। मैंने अपने प्यारे मर्द का बच्चा गोदी में नहीं डाला, पर एक बार कोख में तो डाल लिया था। और फिर मेरी कोख ने उससे माफी मांगते हुए कहा—जिस दुनिया में तुम्हें पूरा आदर नहीं मिल सकता, तुम्हें उस दुनिया में लाकर मैं तुम्हारा निरादर नहीं करवा सकती·· !

ऐसे समय किसी डाक्टर का औज़ार सिर्फ मांस को नहीं चीरता, रूह को भी कहीं से छील जाता है—है न ?

बस, रूह में वही एक जख्म-सा है, जो मैं सोचती हूं कि मेरी बेटियां अगर पढ़-लिखकर सयानी हो गईं तो मेरे जख्म पर अंगूर आ जाएगा !

एक शायर : कृष्ण अदीब

आपका असली मजहब तो शायरी है। फिर ये बाकी के मजहब किस वास्ते अख्तियार कर लिए ?

मजहब तो सचमुच एक ही है—शायरी, जिसे मेरी रूह ने चुना ! बाकी मजहब मेरी जरूरतों ने चुने। हिन्दू मजहब मुझसे बगैर पूछे मेरे मां-बाप ने दे दिया। ईसाई मजहब मेरी पहली बीवी ने दे दिया और इस्लाम मेरी दूसरी बीवी ने।

अच्छा, फिर अपने असली मजहब की बात कीजिए—शायरी की।

हर मिसरे को मेरी रूह एक मां की तरह जन्म देती है···प्रसव की पीड़ाएं सहकर मुझसे कोई भी मिसरा, न कोई मजहब लिखवा सका है, न कोई सियासत। कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हुआ था, लेकिन एक शर्त पर कि सियासी शे'र नहीं लिखूंगा।

उस वक्त कभी जेल भी जाना पड़ा ?

जेल पूरी जिन्दगी है, मैं जेल-दर-जेल क्यों जाता ?

किस उम्र में एहसास हो गया था कि शायरी आपकी रगों में बहते हुए लहू जैसी है ?

पहले मैं लोगों के शे'र पढ़ता था। जैसे आदम ने कहा है—'एक उनवां का तजुस्सिम है कहानी के लिए, एक सदमे की जरूरत है जवानी के लिए।'

मेरी कलम को जुंबिश देने के लिए एक सदमे की जरूरत थी। वह मिल गया, तो मैं शायर हो गया…।

उस सदमे की कोई तफ़सील सुनाइए।

उस सदमे के बारे में अब मेरा शे'र है—'अब जो मिल जाए तो पहचान ना पाऊं उसको, कल जो रहती थी मेरे जहन मे ख्वाबों की तरह।'

यह न पहचान सकने का कारण सिर्फ लंबे बरस हैं, जो जवानी को झुर्रियों मे बदल देते हैं ''या कोई और कारण ?

नहीं, आज भी मैं बीस साल बाद रोज शाम को जब व्हिस्की का गिलास भरता हूं, पहला घूट उसके नाम पर पीता हू। वह मेरा तसव्वुर थी। मेरे तसव्वुर की करामात ! इश्क की जो तशरीह मेरे लिए थी, उसके लिए नहीं थी। उसका सिर्फ दोस्ती का कोई ऐसा अन्दाज था, जिसे मैं मुहब्बत समझ बैठा।

हां, करामात के चेहरे पर कभी झुरियां नहीं पड़तीं…।

मैं शाम के छः बजे से लेकर रात के बारह बजे तक शायर होता हू—सिर्फ मैं और मेरी करामात !

बाकी समय ?

बाकी समय रोजी-रोटी कमा रहा एक खाविंद होता हू'' और एक बाप। यह बात मेरी दूसरी बीवी समझ गई है, इसलिए कोई मुश्किल पेश नही आती। पहली बीवी नहीं समझी थी, इसलिए बात मुश्किल हो गई थी…।

रोजी-रोटी के लिए आपके हाथ में कैमरा है, एक हाथ में कलम है, जो हमेशा रही है…;पर इस दूसरे हाथ के लिए कैमरे का चुनाव कैसे किया था ?

पहले जो कुछ भी हाथ में पकडा, सब गैरशायराना था। मसलन—पद्रह साल की उमर में फिटर कुली बना था। फिर लुहारों के साथ मिलकर

एक शायर : कृष्ण अदीब

आपका असली मजहब तो शायरी है। फिर ये बाकी के मजहब किस वास्ते अख्तियार कर लिए ?

मजहब तो सचमुच एक ही है—शायरी, जिसे मेरी रूह ने चुना ! बाकी मजहब मेरी जरूरतों ने चुने। हिन्दू मजहब मुझसे बगैर पूछे मेरे मां-बाप ने दे दिया। ईसाई मजहब मेरी पहली बीवी ने दे दिया और इस्लाम मेरी दूसरी बीवी ने।

अच्छा, फिर अपने असली मजहब की बात कीजिए—शायरी की।

हर मिसरे को मेरी रूह एक मां की तरह जन्म देती है···प्रसव की पीड़ाएं सहकर मुझसे कोई भी मिसरा, न कोई मजहब लिखवा सका है, न कोई सियासत। कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हुआ था, लेकिन एक शर्त पर कि सियासी शे'र नहीं लिखूंगा।

उस वक्त कभी जेल भी जाना पड़ा ?

जेल पूरी जिन्दगी है, मैं जेल-दर-जेल क्यों जाता ?

किस उम्र में एहसास हो गया था कि शायरी आपकी रगों में बहते हुए लहू जैसी है ?

पहले मैं लोगों के शे'र पढ़ता था। जैसे आदम ने कहा है—'एक उनवां का तजुसिम है कहानी के लिए, एक सदमे की जरूरत है जवानी के लिए।'

मेरी कलम को जुंबिश देने के लिए एक सदमे की जरूरत थी। वह मिल गया, तो मैं शायर हो गया···।

उस सदमे की कोई तफसील सुनाइए।

उस सदमे के बारे में अब मेरा शे'र है—'अब जो मिल जाए तो पहचान ना पाऊं उसको, कल जो रहती थी मेरे जहन में ख्वाबों की तरह।'

यह न पहचान सकने का कारण सिर्फ लंबे बरस हैं, जो जवानी को झुर्रियों में बदल देते हैं ··या कोई और कारण?

नहीं, आज भी मैं बीस साल बाद रोज शाम को जब व्हिस्की का गिलास भरता हूं, पहला घूट उसके नाम पर पीता हूं। वह मेरा तसव्वुर थी। मेरे तसव्वुर की करामात! इश्क की जो तशरीह मेरे लिए थी, उसके लिए नहीं थी। उसका सिर्फ दोस्ती का कोई ऐसा अन्दाज था, जिसे मैं मुहब्बत समझ बैठा।

हां, करामात के चेहरे पर कभी झुर्रियां नहीं पड़तीं···।

मैं शाम के छ बजे से लेकर रात के बारह बजे तक शायर होता हूं—सिर्फ मैं और मेरी करामात!

बाकी समय?

बाकी समय रोजी-रोटी कमा रहा एक खाविंद होता हूं·· और एक बाप। यह बात मेरी दूसरी बीवी समझ गई है, इसलिए कोई मुश्किल पेश नहीं आती। पहली बीवी नहीं समझी थी, इसलिए बात मुश्किल हो गई थी···।

रोजी-रोटी के लिए आपके हाथ में कैमरा है, एक हाथ में कलम है, जो हमेशा रही है···पर इस दूसरे हाथ के लिए कैमरे का चुनाव कैसे किया था?

पहले जो कुछ भी हाथ में पकड़ा, सब गैरशायराना था। मसलन—पन्द्रह साल की उमर में फिटर कुली बना था। फिर लु[illegible] के साथ मिलकर[illegible]

हाथों में हथौड़ा पकड़ लिया। फिर भट्ठियों का मुंशी बना, ट्रकों का मुंशी भी रहा। फिर बलराज साहनी, पैरिन और रमेश चंदर के साथ मुलाकात हुई। मैं कोई साल भर पार्टी का अखबार भी बेचता रहा। अन्त में जब सब चीजों से तंग आ गया तो सोचा कि सारे दोस्त काम करते हैं, मैं खाली क्यों नहीं रह सकता! दिल्ली में बलराज कोमल था···मैं कई महीने उसके पास रह लेता था। फिर जब एक दिन वह कहता, "कृष्ण! अब तू चला जा, मुझपर बहुत कर्जा हो गया है।" तो मैं कहता, "फिर निकाल किराया, मैं चला जाता हूं।" वह बंबई का किराया दे देता। बंबई जाकर मैं साहिर के पास ठहरता या मोहन सहगल के पास। फिर कुछ महीने बाद बलराज कोमल का खत आ जाता था कि कर्जा उतर गया है, अब तू फिर मेरे पास आकर रह ले। और मैं साहिर से कहता, "निकाल किराया।" वह किराया दे देता···और मैं बंबई से दिल्ली आ जाता था···।

फिर दिल्ली से बंबई और बंबई से दिल्ली की राह तय करते हुए लुधियाना कैसे चले गए?

मैं लुधियाना नहीं जाना चाहता था···लंदन जा रहा था, पर जो लड़की मेरी पहली बीवी बनी थी, एक दिन कहने लगी, "घर का आंगन बड़ी चीज होता है!" सो मैंने सोचा, यह घर का आंगन भी देख लेना चाहिए···और मैं लंदन जाने के बजाय लुधियाना चला गया।

लंदन का सिर्फ 'ल' रह गया, बाकी अक्षर मिट गए?

सचमुच मिट गए। पहली बीवी से मुझे तलाक लेना पड़ा···और मेरे हाथ सिर्फ लुधियाना रह गया।

हाथ की असल चीज तो शायरी है कृष्ण! अपनी कोई बड़ी पसंद की गजल सुनाइए, चाहे दो मिसरे···।

फूल बातों के चुनें शबनमी लहजा देखें,
गीत की झील पर आवाज का बजरा देखें।

हर घडी सामने एक चाद-सा चेहरा देखें,
बंद आखो मे कोई जागता सपना देखें !

शायद इसलिए आपने अपनी नई बीवी का नाम शबनम रखा है। पर यह बताइए कि वह जागता सपना बंद आंखों से देखते हैं या खुली आंखों से ?

मेरी बीवी का सिर्फ नाम ही शबनम है, लहजा शबनमी नहीं। बोलती है, तो मैं हाथ जोडकर कहता हू, "प्यारी शबनम ! जरा धीरे बोल ! तेरी आवाज चार दीवारो को चीरकर आगे के चार घरो के भी आगे पहुच रही है !"

सो, जागता सपना आप सचमुच बंद आखों से देखते हैं ?

जो सपना एक बार आखो मे पड़ जाए, वह फिर चाहे हजार बार आखो को धो लो, तब भी नहीं निकलता। उसे बद आखो से ही देखना पड़ता है। यही सारी तकलीफ की जड होता है। पजाबी का एक शे'र है—
"जागते से सोते अच्छे जो खोए हुओं को ढूढ लाते है···"

जो खो गए हैं, कभी उन्होंने भी आपकी आंखों का रहस्य जाना है ?

बिल्कुल नही ! अगर रहस्य समझते तो खो क्यों जाते ? एक शे'र है—मेरा नही, जोहरा निगाह का है :

हम हैं ठुकराए हुए अपनी तमन्नाओं के,
एक नजर पायें तो अफसाना बना लेते है।
जब भी करता है कोई प्यार भरी बात,
हम शहर के शहर सितारो मे सजा लेते हैं।

एक कलाकार लड़की : मीना

मीना ! एक कलाकार का समझदारी से और एहसासों की गहराई से बुनियादी संबंध होता है···और इन्हीं दो बातों से मुहब्बत का ताल्लुक होता है, इसलिए मैं मुहब्बत के बारे में तुम्हारा नजरिया जानना चाहती हूं ।

बात यह है कि इश्क की किताब बंद करके मैंने अभी ताक पर रखी हुई है । हम दो जोड़ी बहनें हैं । मेरी बहन ने कोई आठ बरस भरतनाट्यम सीखा । नृत्य उसकी कुदरती रुचि थी । उसके जिस्म में एक कुदरती लय थी । पर मैं बहुत छोटी थी जब मैंने जान लिया था कि नाच में मेरी कोई रुचि नहीं है । मेरी कुदरती रुचि चित्रकला में थी । आठ बरस अवनि सेन से यह कला सीखी । फिर कमर्शियल आर्ट का डिप्लोमा लिया, क्योंकि रोजी-रोटी सिर्फ कमर्शियल आर्ट से ही कमाई जा सकती है ।

नौकरी भी की ?

हां, एक एडवर्टाइजिंग एजेंसी में सात-आठ बरस नौकरी भी की । अब फ्रीलांसिंग करती हूं । नौकरी में घुटन महसूस होने लगी थी । वहां एक की बजाय दो बॉस होते हैं, एक एजेंसी का मालिक, दूसरा उसका क्लाएंट, जिसे डिजाइन पसंद करने होते हैं ।

फ्रीलांसिंग से रोजी चल जाती है ?

पूरी तरह नहीं। काम करवाकर बहुत-से लोग पेमेंट नहीं देते। बार-बार पैसों के लिए तकाजा करने से थक जाती हूं। इसके अलावा एक मुश्किल यह है कि लड़की कितनी भी समझदार हो जाए, उसे घर में और समाज में, हमेशा नाबालिग समझा जाता है। उसके लिए एक ही निश्चित भविष्य होता है कि जैसे ही वह बीस-पच्चीस बरस की होती है, उसका कहीं भी ब्याह कर देना होता है। मैं अभी तक…मां से बहस कर-करके, इस होनी से बची हुई हूं।

अपने लिए तुमने कैसे भविष्य की कल्पना की हुई है?

घर, खाविंद और बच्चे मेरे चिंतन में नहीं आते। जानती हूं, वह सब कुछ मेरे 'स्वय' के साथ मिलकर नहीं चलेगा। अगर चल सके तो जिन्दगी के इस पहलू को 'स्वागतम्' कह सकती हूं। पर अब जर्मनी जाकर ग्राफिक्स में स्पेशलाइज करना चाहती हूं। साथ ही परफार्मेंस आर्ट, ऐनिमेशन फिल्म्ज बनाना भी सीखना चाहती हूं। इसके बाद मैं वापस *अपने देश जरूर जाऊंगी। मेरी जड़ें इसी धरती में हैं। यह हो सकता है* कि काम अपने देश में आकर करूं, पर उसकी बिक्री सिर्फ बाहरी देशों में हो…इस तरह शायद मैं जिन्दगी भर कई सरहदें पार करती रहूंगी…।

इस वक्त तुम्हारी उम्र तकरीबन तीस साल होगी। मैं मानती हूं, कलाकार का पहला सपना उसकी कला की प्राप्ति में होता है, पर इंसान के दूसरे सपने से भी इनकार नहीं किया जा सकता। दूसरा सपना मुहब्बत का होता है —कला समान ही शक्तिशाली!

जरूर होती है, मैं इससे इनकार नहीं करूंगी। दो बार इश्क करके देखा था, पर लोग उतनी देर अच्छे लगते है जितनी देर तक दूरी पर खड़े होते हैं। पास से देखने पर वही एहसास हुआ कि वह मुझे 'मैं रहित' चाहते थे। *असल में इंसान दो तरह के होते हैं—क्या मर्द, क्या औरत।* एक तरह के इंसान अपनी ताकत अपने भीतर से लेते हैं, दूसरी तरह के लोग अपनी ताकत हमेशा बाहर से लेते है। और यही दूसरी तरह के लोग हर जगह दिखाई देते है। पहली तरह के कहां है, *कब मिलेंगे, नहीं*

जानती। शायद कभी नहीं मिलेंगे।

> **गनीमत है कि तुम्हारे आखिरी फिकरे में 'शायद' है! यही शायद तुम्हारे दिल का वह दरवाजा खुला रखेगा जिनमें से कभी कोई हकीकत भीतर चली आएगी।**

शायद...मैं अपने भीतर किसी इंकार की गांठ नहीं पड़ने दूंगी। निराशा से लोग बदलाखोर हो जाते हैं। दूसरे से भी बदला लेते हैं, अपने-आपसे भी। मैं यह नहीं होने दूंगी। इससे इंसान की अपनी शख्सियत छोटी हो जाती है। मैंने असल में 'हीर' का दिल पाया है, पर रांझा-रहित हीर का। इसलिए मैं खुद अपना रांझा बनना चाहूंगी...वह हीर, जो रांझा-मुक्त है!

दो राहों का दर्द

शोभना, तुमने तालीम कहाँ तक पाई है ?

एम०एस-सी० तक, अब रिसर्च कर रही हूँ।

इतने सालों में कई सपने और तसव्वुर भी बने होंगे ?

वे भी बदन के अंगों की तरह सहज और स्वाभाविक तरह से बढ़ने लगते हैं, पर कुदरत का यह अमल बहुत सारे मां-बापों को मंजूर नहीं होता।

यानी, वे चाहते हैं कि लड़की इल्म हासिल कर सके, हाथ में डिगरी भी ले ले, रोटी कमाने के काबिल भी हो जाए, पर जब यह सब हासिल करके घर आए, तो अपनी स्वतन्त्र सोचों को दहलीज के बाहर ही छोड़ आए ?

बिल्कुल यही, कि लड़की पढ़ाई तो अपनी मेहनत से कर ले, पर अपनी जिन्दगी का हर फैसला वह उनके हाथों ही में रहने दे।

तुम्हें अपने ब्याह के फैसले के लिए कोई राय देने का हक नहीं होगा ?

राय का हक होगा—पर, एक सीमा तक, मेरा मतलब है कि जिसको भी वह चुनेंगे, उसके लिए शायद मेरी राय पूछ लें—पर यदि मैं अपने-

आप किसीको चुनूं तो वह उनको मंजूर नहीं होगा। अभी तो नौकरी को चुनना भी उनके हाथ है। जैसी भी और जिस तरह की भी नौकरी वो चाहेंगे—मैं वही कर सकती हूं।

शोभना ! क्या इस तरह माथे के चिंतन और पैरों की चाल में एक अनमेल नहीं हो जाता ?

जरूर हो जाता है—खयालों के आगे खुला आसमान पड़ा होता है—और पैरों के आगे दो वालिश्त धरती।

इस हालत में मुहब्बत लफ्ज तुम्हारे लिए क्या अर्थ रखता है ?

सिर्फ एक कल्पना…।

पर जिस कल्पना का हकीकत के साथ कोई रिश्ता न हो—उस कल्पना का क्या अर्थ है ?

अभी तक तो हकीकत को देखने की आदत नहीं। देखूंगी तो देखा नहीं जाएगा।

पर शोभना ! कुछ वरस कल्पना के शून्य में जिया जा सकता है। पर अन्त में पैरों को धरती चाहिए होती है—क्या नहीं ?

यह भी सोचती हूं—साथ यह भी, कि मेरे मां-वाप इस हैसियत में नहीं कि मेरे लिए कोई धरती ढूंढ़ देते।—फिर वह मुझे, अपने लिए, कोई धरती क्यों नहीं ढूंढ़ने देते ?

कल्पना तो एक कोरे कागज की तरह होती है। उसके ऊपर हकीकत को ही कोई इवारत लिखनी होती है।

हकीकत में, या किस्मत में, मैं नहीं जानती। मैंने अभी सिर्फ कल्पना का कोरा कागज हाथ में पकड़ा हुआ है, इसपर किस्मत ही कुछ लिखेगी। मैं नहीं लिख सकूंगी।

फिर जो कुछ किस्मत लिखेगी, वह इवारत तुझे रोज पढ़नी मंजूर

हो सकेगी ?

नहीं हो सकेगी।

उस हालत में ?

अगर उस इबारत से समझौता कर सकी, तो करूंगी। पर, जितना खुद को जानती हू, लगता है—बहुत दिन तक कोई समझौता नहीं कर सकूगी !

फिर उस हालत में ?

कुछ नही सोच सकती···अभी कुछ नही सोच सकती।

अभी कुछ सोच सकने की सम्भावना है, पर शोभना ! जब यह सम्भावना भी नहीं रहेगी तब ?

अगर कुछ चीजें मुझे थाम सकी, तो शायद उनमें मिलकर बध जाऊगी। पर अगर नहीं, तो इस 'अगर' का जवाब मेरे पास कोई नहीं।

शोभना, क्या तुम्हारे जैसी पढ़ी-लिखी लड़की, इस 'अगर' को इसी तरह समाज या किस्मत के हवाले छोड़कर निश्चिन्त हो सकती है ?

मैंने सब कुछ किस्मत के हवाले छोडा हुआ है।

फिर यह क्यो कहा कि तू बहुत दिनो तक किसी गलत चीज के साथ समझौता नहीं कर सकेगी ?

ये दोनो हालतें सच हैं।

पर दोनों एक-दूसरे के विरोधी सच हैं ?

ये विरोधी सच—दो हकीकतें है। मैं अभी सिर्फ कल्पना मे जीती हू। किसी हकीकत को नही जानती, न ही सोचती हूं।

पर शोभना ! कल्पना, तुम्हारे जेहन की चीज है—पैरों की

नहीं। तेरी अपनी ही कल्पना का ताल्लुक जब अपने ही पैरों से पड़ेगा—तब ?

शायद, जब किसी रोजगार से लगूंगी, तब पैरों में कोई हिम्मत आ सकेगी। अभी कल्पना की बात सुनने के लिए, मेरे पैरों में हिम्मत नहीं है—मौका भी नहीं। वही दो बालिश्त धरती है पैरों के सामने। सिर्फ यह कहना चाहती हूं, कि मां-बाप एक तरफ लड़की को तालीमयाफ्ता करते हैं, दूसरी तरफ उसके पैरों को घेर-बांधकर रखना चाहते हैं। ये दो बातें क्यों ? उसे एक बार रोशनी का दर्शन करा देते हैं—फिर उसे हमेशा अंधेरे में जीने के लिए कहते हैं···।

रास्तों की दास्तान

आभा ! तुम्हारी लिखी एक नज्म है :

मैं, तुम्हारी जिन्दगी का / एक पल भी नहीं चुराऊंगी,
क्योंकि मेरी मुट्ठी में कैद होकर
एक, सिर्फ एक पल
—बेहद ही तन्हा हो जाएगा।
और तेरी जिन्दगी के लम्हों को,
अकेला जी पाने की आदत नहीं।

तुम—
किसी भी वक्त आना—
और मेरी जिन्दगी के,
एक-एक लम्हे को,
एक-एक करके,
अपनी कैद में बंद कर लेना।
मेरी जिन्दगी के सारे लम्हों को,
तेरी गुलामी की आदत पड़ गई है।

तुम्हारी इसी नज्म के आधार पर पूछना चाहती हूं कि मुहब्बत चाहे लम्हों में नसीब हो, या बरसों में—पर क्या मुहब्बत गुलामी की आदत है ?

गुलामी की आदत—मेरे जेहन में ही थी। सिर्फ यह कह सकती हूं कि,

क जगह पहुंचकर मुहब्बत गुलामी की आदत से आगे नहीं बढ़ पाती।

ये आदत,—पैरों का कसूर गिननी पड़ेगी—या रास्तों का—या उस मंजिल का, जिसका नाम महबूब है ?

कसूर न पैरों का है, न रास्तों का। पैर चल भी सकते हैं, और रास्ते कई और भी हो सकते हैं। पर यह मन की एक जरूरत है, जो किसी एक महबूब के घर की दहलीज के आगे आकर खत्म हो जाती है।

मन की जरूरत खत्म हो जाए, तो क्या यह कसूर महबूब के घर की दहलीजों का नहीं होता ?

कुछ जरूरतें ऐसी होती हैं जो एक जगह आकर खत्म हो जाती हैं— और जिन दहलीजों के आगे आकर खत्म होती हैं, उनके अन्दर वाले घर खाली होते हैं।

भरे हुए घर के आगे आकर जरूरतें खत्म हो जाएं—वह तो ठीक है, पर, खाली घर के आगे आकर उनका खत्म होना—एक भयानक निराशा के सिवा, और कुछ नहीं।

यह अपना-अपना हश्र है / बचपन से मुझे चलने के वक्त गिनतियां गिनने की आदत थी / और एक दिन चलते-चलते / मेरे पैरों ने गिनती भुला दी / और तेरे घर के आगे / ठिठककर रुक गए,—आगे गिनति भी बहुत थीं / रास्ते भी बहुत / पर मेरे पैरों की जरूरत खत्म हो थी।

प्यारी लड़की ! किसी भी निराशा को आखिरी निराशा सम उसे अपना हश्र मान लेना क्या ठीक है ?

यह बड़ा गहरा सवाल है। अभी जान ही नहीं पाती कि कौन-सी आखिरी होगी ? यह फैसला, अभी किस तरह हो ?

इसका फैसला कभी कोई हादसा नहीं करता। इसका फैस ही दिल का, वह तसव्वुर करता है—जिसके पास, को

कई लोग—पूरे नहीं उतरे होते…।

तसव्वुर के साथ इश्क, मन का होता है, पर जिस्म की भी बहुत जरूरतें होती हैं—जिन्हें सिर्फ तसव्वुर पूरा नहीं कर सकता।

जिस्म की जरूरतों से इंकार की बात नहीं। सवाल सिर्फ तसव्वुर के कायम रहने का, या उसके चटक जाने का है…।

मेरे पैर जिस घर के आगे रुक गए, वह घर खाली था। तसव्वुर ने देखा भी, समझा भी। पर तसव्वुर ने हकीकत से इंकार नहीं किया। उसने मुझे कोई झूठा हौसला नहीं दिया। इसमें मैं यह समझती हूं कि मेरा तसव्वुर चटका नहीं है।

ठीक है, टूटा नहीं—पर प्यारी लड़की, तसव्वुर ने अपने उस खाली-पन के साथ समझौता कैसे किया?

इस सवाल का जवाब तो सिर्फ मेरा तसव्वुर ही दे सकता है—मैं नहीं। कभी उससे बैठकर पूछूंगी। एक बार मैंने उससे पूछा भी था—उससे, जिसमें मैंने अपने तसव्वुर का रूप देखा था। वह कानून की पढ़ाई कर रहा था, इम्तहान चल रहे थे। कहने लगा—'इसका जवाब धीरे-धीरे दूंगा—किश्तों में।' पूरी जिन्दगी की हिम्मत जोड़कर जो सवाल मैंने उससे एक बार पूछा था—उसका जवाब किश्तों में लेने की हिम्मत नहीं है। सिर्फ इतना कहा—'जब एक दिन कानून का पूरा इल्म हासिल करके, तुम एक जज बन जाओगे, तो क्या मुकदमों के फैसले भी किश्तों में दिया करोगे?'

तुम्हारे इस सवाल के आगे उसकी किताबों के सारे कानून छोटे नहीं पड़ गए थे?

कानून का तो पता नहीं, हां! वह चुप हो गया था। मेरे सवाल का जवाब आज तक चुप है।

फिर तुम्हारा जहनी तसव्वुर, उस चेहरे से मुक्त नहीं हुआ जो चुप है?

मुहब्बत : एक अग्नि-परीक्षा

कुमार साहब ! आपकी व्यापारी सूझ-बूझ के बारे में कहा जाता है कि आप किसी भी व्यापार को हाथ में लेकर नीचे की सीढ़ी से शिखर तक ले जा सकते हैं। इस हुनर के माहिर की जिन्दगी में मुहब्बत की क्या और कितनी जगह है, जानना चाहती हूं।

व्यापार में कई बार ऊपर की सीढ़ी से नीचे की सीढ़ी पर भी आना पड़ जाता है। आपने मुहब्बत की बात पूछी है—उसका पहला और गहरा असर बचपन में पड़ता है। वह असर जैसे एक सांचा होता है जिसमें आगे जवानी के दृष्टिकोण भी ढल जाते हैं। जिस परिवार में मेरा जन्म हुआ था, वह संयुक्त परिवार था—कई प्रकार से संयुक्त। कोई डेढ़ सौ एकड़ जमीन थी। मेरे पिता जमींदार थे। पिताजी के सारे रिश्तेदार भी उसी जमीन पर रहते थे, और मेरी मां के सारे रिश्तेदार भी उसी जमीन पर। मेरी ददसाल की तरफ के ज्यादा लोग इंडस्ट्रियलिस्ट थे, ननसाल की तरफ के सारे किसान। जब मेरा जन्म हुआ था, इर्द-गिर्द कोई पच्चीस बच्चे रहे होंगे—मेरी उम्र के, मेरे साथ मिलकर खेलने वाले…

सो यह एक बड़े-से कबीले में पलने का एहसास था…।

पर इर्द-गिर्द के घरों में दिन-रात किच-किच का एक लम्बा सिलसिला था, जिसमें से मेरे पिता मुझे निकालकर अलग ढंग से पालना चाहते थे। मेरे पिता उस कबीले के सबसे ज्यादा शिक्षित मर्द थे—बैंकर भी

थे, और जर्नेलिस्ट भी। घर मे मेरी बडी बहन मुझसे कोई आठ बरस बडी थी — मेरी छोटी मां जैसी। सो, घर में दो माए थी। और घर मे सख्त किस्म की देखभाल थी— कि बच्चा कभी गाली नहीं दे सकता, कभी कोई जिद नही कर सकता। रोज की प्रार्थना के बगैर, चाहे कितनी ही भूख क्यो न लगी हुई हो, रोटी का एक ग्रास भी नहीं खाया जा सकता था। प्रार्थना भी तभी हो सकती थी जब सिर से पैर तक मल-मलकर नहा लिया गया हो। एक मेरी मां, एक मा जैसी बहन, दोनों मुझे पकड-कर, खींचकर, घसीटकर, पानी में डाल देनी थीं। और इस तरह एक दिन मे दो-दो बार नहाना पडता था, दो बार प्रार्थना करनी पडती थी—जिसने *एक उलटा अजीब एहसास यह भी दिया कि मैं अडोस-पडोस के सब* बच्चो से बढिया हूं, जन्म से बढिया और विशेष।

यह सुपीरियारिटी काम्प्लैक्स कब तक चला ?

इसके कुछ बाहरी कारण भी थे—मेरे पिता के पास कार थी, और किसी- के घर नहीं थी। मैं कार मे स्कूल जाता था, और बाकी सब बच्चे पैदल। फिर उनके साथ खेलने से मैं कतराने लगा। मुझे क्योंकि दिन मे दो बार नहलाया जाता था—इसलिए बाकी बच्चो से मुझे एक गध-सी आने लगी। मेरे कपडे भी उनकी अपेक्षा बहुत बढिया होते थे, सो काम्प्लैक्स सिर्फ मुझमे नहीं आया, अडोस-पडोस के बच्चों में भी आ गया—इनफीरिया-रिटी का। एक अन्तर जायदाद ने डाल दिया। मां की तरफ के रिश्ते मे मा की सात बहनें थी, पर सगी नही, ताऊ-चाचा की लडकिया। और ननिहाल की जायदाद मे जितना हिस्सा अकेली मा का था, उतना बाकी सबमें बंटा हुआ।

यानी आपकी मां का हर एक से सात गुना ज्यादा।

हां, और इसी बात ने मेरी मौसी लगने वाली सब औरतों में मेरी मा के लिए नफरत पैदा कर दी। इस नफरत से घबराकर मा ने वह जगह त्याग देनी चाही, पर साथ ही माता-पिता का यह भी नजरिया था कि हम, लोगो की नजरों-निगाहों से घबराकर, अपनी जायदाद का हक क्यो

ड़ें ? और फिर एक विजली-सी आसमान से टूट पड़ी । मां के हक
ली—उसे विरसे में मिली हुई वसीयत चुरा ली गई । मेरे नाना गुजर
ए थे जब मेरी मां बच्ची-सी थी । उसे पालने वाली रिश्तेदार औरत के
ाथों में वह वसीयत थी ।

सो, इस अमानत की चोरी आपके बाल-मन पर पहली बिजली की तरह गिरी थी ।

यहां तक कि मैं सामने थाली में परसे हुए चावल खा रहा था जिस समय घर को खाली करने के सम्मन लेकर पुलिस आई थी । सारे रिश्तेदार पुलिस के साथ थे और जिस तरह हंस रहे थे, वह हंसी मेरे कानों को इस तरह छील गई कि पता नहीं कितने वरस मेरे कान जख्मी रहे । उन लोगों ने छत को तोड़ना शुरू कर दिया कि हम घबराकर अपने-आप घर के बाहर निकल जाएंगे । टूटती हुई छत की मिट्टी मेरे सामने रखी हुई थाली के चावलों पर ऐसे छिड़की गई कि बरसों तक मुझे हर खाने की चीज में किरकल महसूस होती रही । अब तक भी मैं दाल में कोई कंकड़ नहीं सहन कर सकता । चावल में एक भी कंकड़ नहीं । अमृताजी ! यह सारा कहर हमारे एक दूर के रिश्तेदार ने डलवाया था जिसे हम शकुनी मामा कहा करते थे । वह कानूनदां था, उसीने वसीयत गुम करने की साजिश रची थी, उसीने मेरी मौसियों के दिमाग में जहर घोला था । यही भयानक घटना थी जिसके कारण मुझे आज तक कानूनदानों से नफरत है, जो सच की रक्षा के लिए बनते हैं, पर झूठ को सच करके दिखाते हैं, और सच को झूठ करके । वही समय था जब मैं अदालतों के हर इंसाफ पर शक करने लगा था । मुझे ऐसा लगने लगा जैसे कि दुनिया की हर चीज बिक्री के लिए बाजार में रखी जाती है—इंसाफ भी उसी बाजार में बिकता है । ठहरिए···अभी और सवाल मत पूछिए । उस समय की एक और भयानक याद है—उस दिन मेरा सातवां जन्म-दिन था । पहले हर जन्म-दिन रेशमी कपड़े पहनकर और कमर पर सोने की करधनी बांधकर मनाया जाता था । उस दिन मैं अकेला और खोया-खोया-सा खड़ा उस अमरूद के पेड़ पर चढ़ गया जो

मेरी मां ने कभी अपने हाथों से लगाया था। पेड़ पर चढ़कर अभी मैं एक अमरूद तोड़कर खाने ही लगा था कि शकुनी मामा दौड़ता हुआ आ गया। उसके साथ वह गुमाश्ता भी था जो मेरे पिता का गुलामदी हुआ करता था, पर अब शकुनी मामा के हाथ बिक चुका था। उसने जोर से मुझे झिड़की दी, "यह अमरूद का पेड़ तेरा नहीं है, तू इसका अमरूद नहीं खा सकता···" मैंने जोर से वह अमरूद जमीन पर फेंक मारा···।

नफरत की ये गांठें फिर किस उम्र के किन हाथों ने कुछ खोलीं ?

हम अगले दिन सब बहन-भाई और माता-पिता अपनी जमीन छोड़कर अहमदाबाद चले गए। पर जाने के समय की एक प्यारी-सी याद है कि वहां एक कैथोलिक परिवार रहता था, जो हमारा कुछ नहीं लगता था। उसी परिवार के सारे जीव बाहें खोलकर दौड़े आए और बोले, "सब बच्चों को हम प्यार से पाल लेंगे, आपकी अमानत समझकर रखेंगे, आप बड़े लोग जाएं और कारोबार संभालें।" जो हमारे रिश्तेदार कहे जाते थे, वे उस समय दुश्मन थे, और जो गैर थे, वे मित्र थे···। यह भी एक गहरा असर मेरे दिल में उतर गया। पर हम सब बच्चे माता-पिता के साथ चले गए। वहीं जलावतनी के बरस थे, जब मुझमें व्यापार की तीक्ष्ण सूझ पैदा हो गई। मैंने जिन्दगी की चुनौती को सिर-माथे पर कबूल कर लिया।

सो, कैथोलिक परिवार की वे बाहें थीं जिन्होंने आपके पत्थर हो रहे दिल में एक जगह कोमल-सी भी रख ली···।

इसे भी मैं अपने पिता के आचरण का हिस्सा समझता हूं, क्योंकि सारे कुनबे में से कोई भी उस कैथोलिक परिवार के निकट नहीं फटकता था, पर मेरे पिता उनके तीज-त्योहार पर सदा शामिल होते थे, और वे भी हमारे त्योहारों में हमारे घर आते थे···।

पिताजी के आचरण से आपने विरसे में और क्या-क्या पाया है ?

बड़े होकर आई० ए० एस० के इम्तहान में मैं एक पेपर में रह गया था। मां चाहती थी, मैं कोई पक्का बड़ा अफसर बनूं—उसकी रग-रग में

इनसिक्यूरिटी थी। पर पिता जी के आचरण में लोहे जैसी मजबूती थी, वह नदियों-दरियाओं में नहीं, खुले समुद्र में तैरना जानते थे। वह चाहते थे, मैं भी एडवेंचरर होऊं और बड़े-बड़े व्यापारों में हाथ डालूं। मैं अपने पिता पर गया हूं।

बड़े व्यापारों के एडवेंचर में मुहब्बत भी एडवेंचर की तरह की, या मां के स्वभाव के अनुसार कहीं कोई पक्की गांठ बांध ली ?

मैंने अपने पिता की शिक्षा को रग-रग में ढाला है, हर तरफ से—व्यापार की तरफ से भी, और मुहब्बत की तरफ से भी।

यह दूसरी तरह के एडवेंचर कितने किए होंगे, और उनकी खुशी और उनकी टीस कैसे झेली ?

जब तक कोई मुहब्बत सिर्फ अकेले रूप में होती थी, तब तक वह मेरी खुशी बनती थी। पर जब वह विवाह की शक्ल इख्तियार करने लगती थी—वह मेरे लिए अकेली नहीं रहती थी। उसके साथ कोई और कुनबा जुड़ जाता था, कोई और मजहब, और उनके कारण सैकड़ों उलझनें। सो, हर मुहब्बत अंत में सिर्फ एक टीस बन जाती रही...।

कुमार साहब ! आपने अभी तक किसी मुहब्बत को ब्याह का लफ्ज नहीं दिया ?

१९६८ की बात है—यह लफ्ज मेरे हाथों में पकड़ा हुआ था, किसीको देने के लिए, मेरी उंगलियों में धड़क रहा था, मेरी उंगलियों का कम्पन इस लफ्ज को छू रहा था—जब उस लड़की के मां-बाप ने कहा, "तुम्हारे पास न घर है, न कार, तुम इससे ब्याह नहीं कर सकते।"—सो, वह लफ्ज मैंने धरती पर फेंक दिया। तब नौकरी करता था। नौकरी छोड़ दी, और बहुत बड़े व्यापारों में हाथ डाल दिया। जिन्दगी बिलकुल बदल गई। दो मकान बम्बई में लिए, एक बंगलौर में, एक मैसूर में। चार कारें रखीं। हर मकान को खूब सजाया। हर जगह अलग-अलग नौकर रखे। उस समय उसी लड़की के मां-बाप विवाह का पैगाम लेकर

आए, पर मैं धरती में फेंका हुआ लफ्ज मिट्टी में से नहीं उठा सकता था। फिर और भी कई रिश्ते आए, हाथों में लाख-लाख रुपये के दहेज का इकरार लेकर,—पर मेरे हाथ सुन्न हो चुके थे। न वह किसी दहेज की रकम को ले सकते थे, न किसी लड़की के हाथ को।

पर कुमार साहब ! कई हाथ इस लफ्ज को मिट्टी में फेंकने का कारण बनते हैं, पर कई हाथ ऐसे भी होते हैं जो इस लफ्ज को मिट्टी में से उठाकर, झाड़-पोंछकर, इसे फिर कीमती बना देते हैं। ऐसा कोई हाथ आपके सामने नहीं आया ?

एक आया है, वह लड़की पिछले पांच बरसों से मेरी जिन्दगी के हर दुख-सुख में मेरे साथ है—जिन्दगी के उतार-चढ़ाव की अग्नि-परीक्षा में से भी गुजर चुकी है। मेरी जिदों की अग्नि-परीक्षा में से भी गुजर चुकी है। मैंने कभी उससे कोई इकरार नहीं किया, पर उसके पैरों के नीचे उसकी अपनी जमीन है, और वह अडोल खड़ी है। अब मुझे लगता है कि मैं जिन्दगी में सिर्फ उसीके साथ कभी घर बसा सकूंगा…।

'कभी' लफ्ज आपने क्यों बरता है ?

'विवाह' लफ्ज बड़ी हद तक हालतों के रहम पर होता है। इस समय कुछ आर्थिक नुकसान इतने भयानक हुए हैं कि मुझे फिर कोई जमीन अपने पैरों के लिए ढूंढनी है। मैं हालतों की कमजोर जमीन पर खड़े होकर यह फैसला नहीं कर सकता, एक मजबूत जमीन पर खड़े होकर करूंगा। कोई मजबूत फैसला सिर्फ मजबूत कदमों से ही किया जा सकता है।

वह इन सब बरसों का इन्तजार करेगी ?

जरूर करेगी। उसमें मेरा यही विश्वास है जिसे मैं मुहब्बत कह सकता हूं। अगर उसकी कशिश सिर्फ कुछ महीनों के लिए होती, तो वह इस समय तक खत्म हो चुकी होती। वह वैसी ही है, इसीलिए मैं उसके अस्तित्व से मुहब्बत का लफ्ज जोड़ सकता हूं। एक बात और बताऊं, कि

जिस शकुनी मामा ने हमारी जमीन-जायदाद छीनी थी, वह कोई आठ-नौ वरस हुए, कोढ़ के रोग से मर चुका है। इससे मेरा धरती की अदालतों में नहीं, पर आसमानी अदालतों में विश्वास वढ़ गया है। स्वयं की ताकत के लिए मुझमें इतनी जिद कहां से पैदा हुई थी? मैं एक घटना वताना भूल गया हूं। मैं जव आठवीं में पढ़ता था, उस उम्र की वात है। मेरा छोटा भाई कोई नौ वरस का था, साथ में पड़ोस के दो वच्चे और थे, और हम चारों वच्चे मैंगलौर के खद्री मन्दिर में खेल रहे थे। यह शिव का मंदिर है मछीन्द्रनाथ जोगी का वनाया हुआ—सात तालावों का मंदिर। वहां कई हट्टे-कट्टे साधु वैठे हुए थे। अचानक उन साधुओं ने हम चारों वच्चों पर हमला कर दिया, और हमें टांगों और वांहों से पकड़कर जंगल में ले गए। वहां जंगल में एक गुफा थी, जहां और भी साधु वैठे हुए थे, और आग जलाकर कोई मंतर-शंतर पढ़ रहे थे। वहां वह हमारी एक-एक उंगली काटकर और हमारी एक-एक आंख निकालकर हमें अपने ऊंटों की सेवा करने के लिए अपना गुलाम वनाना चाहते थे—कि मैं हाजत का वहाना करके वहां से वाहर दौड़ आया। एक साधु ने दौड़कर मेरा हाथ पकड़ लिया, और मुझे जंगल की ओर ले गया। वहां मैं उस साधु को धक्का देकर और झाड़ियों में धकेलकर शहर की ओर भाग लिया। पैरों में जितनी ताकत थी, सारी लगा दी। मैं ही चारों वच्चों में वड़ा था, वाकी छोटे वहीं गुफा में रो रहे थे। गांव में शोर मच गया, और मेरे पिता पुलिस लेकर गुफा पर पहुंच गए। इस तरह हम सव वच्चे वच गए। तव से मुझे साधुओं से सख्त नफरत है। एक ओर साधुओं से नफरत हुई, दूसरी ओर कानूनदानों जैसे सख्त दुनियादारों से। यही दो तरह की नफरत थी, जिसने मुझे स्वयं में ताकत पैदा करने की जिद दी। यही जिद है—मैं आज लाखों की तवाही के आगे भी हारा नहीं। कभी नहीं हारूंगा।

जमीला ब्रजभूषण

जमीला ! आप अंग्रेजी की लेखिका हैं, इसलिए अपने पाठकों से पहले आपका परिचय करा लूं। आप अपनी किताबों के नाम बताइए।

मेरी सबसे मशहूर किताब ज्वैलरी पर है। १९५४ मे उसका पहला सस्करण छपा था। उसके कारण मेरा नाम ज्वैलरी के साथ जुड़ गया है। इसका नाम है, 'इडियन ज्वैलरी, ऑरनामेंट्स एण्ड डॅकोरेटिव डिजाइस', फिर १९५८ मे एक और किताब छपी थी, 'इडियन कास्ट्यूम्स एण्ड टैक्सटाइल्स', १९६१ मे एक और छपी, 'इडियन मैटिल वेयर'।

इतिहास मे जो शृंगार औरत ने किया, उसे आपने साहित्य का शृंगार बना दिया ?

यही समझ लीजिए, पर अब जो किताब छपी है, वह दूसरे क्षेत्र की है। वह कमलादेवी चट्टोपाध्याय की जीवनी है।

जमीला, आप कभी कमला के पति से मिली हैं ? हरेंद्रनाथ से, यह बंगला के कवि भी हैं, और फिल्म-अभिनेता भी।

नहीं, मैंने सिर्फ उनकी फिल्में ही देखी है हालाकि वह सरोजनी नायडू के सगे भाई हैं, और जब मैं छोटी होती थी, तब सरोजनी को खूब देखा था। वह लखनऊ मे मेरी ननिहाल मे ठहरती थी।

कमलादेवी की नजर में हरेंद्रनाथ कलाकार के तौर पर, और इंसान के तौर पर कैसे हैं ?

असल में जब उनकी शादी हुई, कमला की उम्र बहुत कम थी। हरेंद्रनाथ ने उन्हें संगीत की एक पार्टी में देखा था। फिर, जिनके घर ठहरे हुए थे, अपने मेजवान से कहने लगे कि, मुझे कमला से शादी करनी है। कमला बहुत बढ़िया गाती थी, हरेंद्र शायर थे, बहुत रोमांटिक भी। पर वह शादी बेजोड़ थी। कमला बहुत गंभीर स्वभाव की थी, उसे काम की लगन थी, और हरेंद्र हमेशा उसी तरह रोमांटिक रहे। यह शादी निभने वाली नहीं थी पर अब, कमला न उस शादी के बारे में कुछ कहती है, न हरेंद्र के बारे में कुछ कहती है।

जमीला, अगर मुनासिब समझो तो इस सवाल को आपकी तरफ मोड़ लूं ? आपके नाम से जाहिर होता है कि आप मुस्लिम घराने की हैं, और आपके पति हिन्दू घराने के। यह ब्याह किस तरह हुआ ?

हम दोनों एकसाथ पढ़ते थे, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में। शादी का होना बहुत आसान होता है, निभाना बहुत मुश्किल।

पर, आपके लिए तो होना भी शायद आसान नहीं हुआ होगा ?

हां ! आसान तो नहीं था, पर यह नहीं सोचा था कि नतीजा क्या निकलेगा ? हम दोनों कश्मीर में थे, वहां छुपकर ब्याह कर लिया।

दोनों में से किसीके मां-बाप रजामंद नहीं थे ?

यह १९४२ की बात है, उस वक्त लोग बहुत कट्टर हुआ करते थे। असल बात यह थी अमृता ! कि मेरी एक बदनसीब शादी पहले भी हो चुकी थी, तलाक भी हो चुका था। मैं मन की बड़ी टूटी हुई हालत में थी। ये ब्रज अच्छे लगे तो मेरी मां ने मेरे मनोविज्ञान को उलटी तरफ मोड़ दिया। कहा कि मैं ब्रज के साथ शादी कर लूं। पर मां यह तरीका बरत रही थी कि, अगर वह ना करेगी तो मैं शादी जरूर करूंगी, पर अगर

वह हां करेगी, तो मेरा मन अपने-आप ही, उसकी तरफ से हट जाएगा। यह सब मुझे बाद मे पता चला। मैंने शादी कर ली तो, हिंदुओं में भी तूफान उठ खड़ा हुआ, और मुसलमानों मे भी। हमारे पास कोई नौकरी नहीं थी, न पैसा। नौबत यहां तक आ गई कि दो-दो दिन रोटी से भूखा रहना पड़ा। फिर कहीं जाकर मां ने सुना कि हमारी यह हालत है। हमारी बहुत बड़ी जमीदारी थी। इलाहाबाद और कानपुर के बीच एक जगह है, कड़ा माणिक पुर। ऐतिहासिक जगह है। राजा जयचंद के समय यह राजधानी होती थी। खिलजियों के समय भी (अलाउद्दीन खिलजी और जलालुद्दीन खिलजी के समय) हम कड़े के सय्यद थे। इस बेचारगी की हालत मे रहने के आदी नहीं थे। ब्याह के बाद यह हालत हो गई, तो मां ने सौ-सौ रुपया महीना बांध दिया, साथ ही अपने आमों के बागों की रखवाली ब्रज के हवाले कर दी। कड़े मे मेरे परदादा का बनाया हुआ एक घर था, बहुत बड़ा। इतना बड़ा कि सौ पलंग मरदाने के अंदर बिछ सकते थे, सौ जनाने के अंदर। वहां हम ढाई बरस रहे। वहीं हमारे घर दो बच्चे हुए—बिना किसी शहरी सहायता के। वहीं, मैंने पुरानी हिन्दोस्तानी दवाइयों के नुस्खे सीखे।

पर जमीला! अगर मां इतनी मेहरबान नहीं होती, तो शादी का हश्र क्या होता? क्या कड़े वक्त को मन के जोर पर लांघा जा सकता था?

मां की शुक्रगुजार हूं। पर वक्त, उस तरह नहीं, तो किसी भी तरह लांघा ही जाना था। शादी से पहले, मैंने कभी चूल्हा नहीं देखा था। घर का बावर्चीखाना कमरों मे बहुत दूर होता था, पर शादी के बाद जब यह सब कुछ देखा तो बहुत एडवेंचरस स्पिरिट मे। बल्कि, वही दिन मेरी जिन्दगी के सबसे बढ़िया दिन थे। अब भी याद आते है, तो मन मे रोमांच आता है।

आपने कहा था, शादी का करना आसान होता है, निभाना मुश्किल।

हमारे मुल्क में औरत के संस्कार ही इस तरह के हैं कि वह तो मरकर भी निवाह लेगी, पर मर्द को कभी पछतावा न आए, यह मुश्किल है।

ब्रज को कभी पछतावा आया है ?

कह नहीं सकती। असल में ब्रज के कैरियर पर बहुत असर पड़ा।

अब तो वह 'मिनिस्ट्री ऑफ कॉमर्स' में हैं।

हां, अब तो हैं,। जब कभी बात होती है—तो यह भी कहते हैं, कि मेरे साथ जो सबसे बढ़िया कुछ हुआ है, वह तेरे साथ शादी है। एक मजाक की बात बताऊं ? एक बार मैं बहुत बीमार थी, बीमारी लंबी हो गई, तो ब्रज के रिश्तेदारों में से, एक ने ब्रज को सलाह दी कि वह मुझे सीढ़ियों के ऊपरले सिरे से धक्का दे दे। कुदरती मौत लगेगी···और इस तरह एक नहीं, दो बीमारियां एकसाथ हट जाएंगी।

मैं खुश हूं जमीला ! आपने इस भयानक सलाह को मजाकिया बात कहा है।

सिर्फ अभी नहीं, हम दोनों तब भी बहुत हंसे थे इस सलाह पर। अब तो हमारे बच्चे भी इस सलाह पर हंसते हैं। मेरी बड़ी बेटी अनीता कहती है, "मामा, आपकी तो पूरी जिंदगी बेजार है।" और, मैं हंसती हूं। उससे कहती हूं, अगर मैं हिन्दू औरत होती, तो मेरा ब्याह ही नहीं होना था। जहां भी बात चलती, वह पंडित को पत्री दिखाते, और पंडित पत्री से पढ़कर इतनी बेजारियां बता देता, कि मेरे साथ कोई ब्याह ही नहीं करता। अच्छा। मुसलमान थी, ब्याह तो हो गया पर बात यह है अमृता-जी कि, मैंने एक एकाकीपन भोगा है हमेशा। ब्रज के नजदीकी रिश्तेदार कभी मेरे करीब नहीं आ सके। पर सोचती हूं, यह मजहब के फर्क की वजह से इतना नहीं है, जितना सभ्यता के फर्क की वजह से है।

मेरा खयाल है जमीला ! यह एकाकीपन आज के समय में उन सबकी तकदीर है, जो मानसिक तौर पर अलग तरह के होते हैं।

हां ! मैं भी यही सोचती हूं। वहां, कड़ा माणिकपुर में, मेरे नानाजी की

बहुत बड़ी लाइब्रेरी थी। कम-से-कम पचास हजार किताबें होंगी। वे किताबें हम दोनों पढ़ते थे। रोज छः-आठ घंटे पढ़ते थे। रात को पढ़ते, तो सुबह के तीन बज जाते थे। फिर जब १९४७ में जामिया मिलिया की लाइब्रेरी जला दी गई थी, तब व्रज ने रिसर्च अफसर के तौर पर कांस्टीट्यूएंट असेंबली में नौकरी कर ली थी। हम दिल्ली में थे। करोल बाग में रहते थे। उस मुहल्ले में, जहां कोई बीस हजार मुसलमान मारे गए। एक बात सुनाऊं उन्हीं दिनों की। मैं व्रज से कहा करती थी, अगर हमारे घर के ऊपर इसलिए हमला हुआ कि मैं मुसलमान हूं तो लोगों के सामने मुझे शुद्धि करने के लिए न कहना। मैं कट्टर मुसलमान नहीं, पर शुद्ध होकर हिन्दू बनना भी मुझे कबूल नहीं।'''

आपकी इस बात को जमीला! मैं आपकी मानसिक शक्ति कहूंगी। मजहब में कट्टरता होना भी बुरा है, पर मजहब बदलना उससे भी बुरा है।

तो मैं कह रही थी कि, कड़ा माणिकपुर में, हमने अपने गरीब रिश्तेदारों से कुछ अरबी और फारसी की पाडुलिपियां खरीदी थीं—बहुत सस्ती, मगर बहुत कीमती थीं। उन्हें पेटियों में रखकर, हम दिल्ली ले आए थे। जब जामिया की लाइब्रेरी जला दी गई, तब हमने वे सारी पाडुलिपियां जामिया लाइब्रेरी को दे दी थीं।

जमीला! आपने सिर्फ लाइब्रेरी को कीमती पांडुलिपियां नहीं दी हैं, दोनों मजहबों को भी जीने का नजरिया दिया है।

अपनी धूप में, अपनी छाया में

दोस्त ! मैं जानती हूं कि आपका नाम मेरे होंठों पर आएगा तो कोमल लहजे में आएगा, क्योंकि मैं आपके एहसासों की कोमलता को जानती हूं, पर अगर मैंने इसे कागज पर लिखा, तो कई आंखें इसे उस नजर से नहीं देखेंगी, जिस नजर से यह देखा जाना चाहिए। इसे कोई तकलीफ न पहुंचे, इसलिए आज बातों में भी आपका नाम नहीं लूंगी। सिर्फ आपके दर्द को और उसके रूप को पहचानने के लिए पूछती हूं कि आप ब्याह और मुहब्बत, दो हकीकतों के बीच खड़े होकर, कैसा महसूस कर रहे हैं ?

दीदी ! इसका एहसास एक गुफा के सफर का एहसास है, जिसे तय करते हुए गुफा के दोनों रोशन दरवाजे हर सांस, हर कदम पर देखना चाहूं तो देख सकता हूं। अफसोस सिर्फ यह है कि दोनों रोशन दरवाजों के बीच का सफर अंधेरा क्यों है ? दरवाजे दोनों रोशनी में हैं, मुझे इनकार नहीं है, पर बीच में अंधेरे की लकीर क्यों है ? यह सफर का अंधेरा है, मंजिल का अंधेरा नहीं है।

पर दोस्त ! दो दरवाजों की असलियत दो दरवाजे हैं। दोनों अपनी-अपनी नींवों में, अपनी-अपनी धरती में गड़कर खड़े हुए हैं। आप एक ही समय में दो दरवाजों में से कैसे गुजर सकते हैं ? इसके लिए गुफा का अंधेरा चीरकर आप यह नहीं सोचते कि आपको किसी एक दरवाजे का रुख करना पड़ेगा ?

मैं किसी दरवाजे को एक मंजिल बनाने की बात नहीं कर रहा हूं। मैं सिर्फ यह सोचता हूं कि दोनों दरवाजों में से वह ताजी हवा क्यों नहीं आ सकती कि गुफा के सफर में मैं आसानी से सांस ले सकूं···और दोनों दरवाजों में से रोशनी की वे किरणें क्यों नहीं आ सकतीं कि गुफा की सीलन में मैं उनकी गर्माहट अपने कांपते हुए शरीर से लगा सकूं···।

तेरे घर से बाहर सिर्फ तेरा घर दीखे
और तेरे घर की खिड़की से मुझे सारा घर दीखे
और अपना भी घर मिले···

गुफा का भले ही कोई भी दरवाजा हो, पर आगे वह घर हो, जिसमें मुझे अपना घर मिले, और वह खिड़की, जिसमें से कोई आसमान देखना वर्जित न हो।

दोस्त! महबूब का एक चेहरा—घर भी होता है, आसमान भी। पर सवाल दो चेहरे का है, जिनके दो वजूद हैं। क्या आपके मन की अवस्था में दोनों चेहरे पिघलकर एक हो जाते हैं? या हो सकते हैं?

नहीं।

फिर उनके दो अलग वजूद दो अलग राह हैं। आप यह नहीं सोचते कि दोनों में से कोई एक रास्ता आपके पैरों का सफर है?

मैं यह नहीं सोचता कि ये दो रास्ते दो उलटी दिशाओं में जाते हैं। मैं समझता हूं कि घर में कमरे की और आंगन की अपनी-अपनी जगह है। कमरे की दहलीज लांघकर आंगन में भी जाया जा सकता है, और लौटकर उसी दहलीज से वापस कमरे में भी आया जा सकता है। विवाह वह कमरा होना चाहिए, जिसका दरवाजा महबूब के आंगन की तरफ भी खुल सकता हो।···

आप मर्द हैं, इसलिए आपके मन की इस अवस्था को मैं सिर्फ एक मर्दाना विचार न समझ लूं, इसलिए पूछती हूं कि अगर आपकी

जगह, मन की यही अवस्था आपकी बीवी की हो—जो सोचती हो कि उसके ब्याह वाले कमरे का एक दरवाजा उसके महबूब के आंगन में खुलना चाहिए—तो आप उसके इस तरह सोचने का इसी तरह आदर करेंगे जैसे अपने सोचने का करते हैं ?

सिर्फ आदर ही नहीं करूंगा, बल्कि मैं अपने हाथों से ईंटें और गारा ढोकर उस आंगन को और मजबूत करूंगा, और उसपर अपने हाथों से लिपाई करना चाहूंगा। आंगन की धूप—आंगन में बैठे हुए मर्द पर भी उसी तरह पड़ती है, जैसे औरत पर। धूप के लिए कोई अन्तर नहीं होता।

आपके मन की इस अवस्था को दोनों औरतों ने पहचाना है ?

काफी हद तक···।

फिर गुफा के सफर में अंधेरा क्यों है ? अभी आपने सफर के अंधेरे की बात की थी।

यह गुफा का अंधेरा असल में इस पारदर्शी गुफा के बाहर गुजरने वाले लोगों की परछाइयों से भरा हुआ है।

गुफा के दोनों दरवाजों की रोशनी आपकी है, फिर गैरों की परछाइयों से पैदा हुए अंधेरे का इतना दर्द क्यों ?

यह दर्द नहीं है। यह परछाइयों का खलल है—खामखाह की आवाजों का शोर। अगर पहली उम्र होती, इस शोर को कम करने के लिए मैं बहुत ऊंची आवाज में बोलता, शोर से भी कहीं ऊंची आवाज में। पर अब अपनी शान्त चुप को मैं अपनी आवाज से भी तोड़ना नहीं चाहता। मेरे अस्तित्व का तार दोनों दरवाजों से जुड़ा हुआ है, इस अवस्था को भंग करना मुझे गवारा नहीं है। इसलिए गुफा का अंधेरा भी मेरे अस्तित्व में शामिल हो गया है।

पर अगर कभी, और जब भी, आपकी प्रेमिका की जिन्दगी में कोई पति नाम का आदमी आएगा, क्या वह भी इस अवस्था में शामिल

हो सकेगा ?

आएगा नहीं, है। यहां मुझे 'काश' लफ्ज इस्तेमाल करना पड़ेगा कि काश ! वह भी हमारे आंगन की धूप में बैठ सकता...उसके लिए आंगन के सामने अगर कोई खाई भी थी—तो मैं खाई पर अपने तन का पुल डाल देता—जिसपर से गुजरकर वह आंगन में आ सकता...और हम सब अपनी धूप में बैठ सकते, अपनी छाया में बैठ सकते...।

ब्याह और मुहब्बत : दो सवालिया फिकरे

आपका नाम जानती हूं, पर अपनी कलम को नहीं बताऊंगी, यह मेरा आपसे इकरार है। इसलिए निस्संकोच बताइए कि आपने अपनी पक्की उम्र में एक बहुत कच्ची उम्र की लड़की से जो मुहब्बत की थी, वह सही अर्थों में मुहब्बत थी ?

हां, थी। उसका खो जाना ही मेरी उदासी और गमगीनी का कारण है...।

पर आपके सामने एक की जगह दो सवालिया फिकरे आ खड़े हुए थे। एक देश आपके पहले ब्याह का था, जहां से आप जलावतन नहीं होना चाहते थे। दूसरा देश आपके इश्क का था, और आप उसके शहरी भी बनना चाहते थे। क्या मुहब्बत के खो जाने का यही कारण नहीं है ?

दूसरे देश में मैं भागकर गया था, वहां की हर मुखालिफत मेरे पीछे पड़ गई थी—पुलिस, कानून।...अगर मुझे उस देश की पनाह मिल जाती, मैं पहले देश की ओर पलटकर न देखता। वह पहला देश मैं छोड़ सकता था, मन से कई बरस से छोड़ा हुआ था...पर नये देश में किसी-न-किसी तरह रह सकने के कई उचित और अनुचित ढंग होते हैं, पर वह ढंग मैं नहीं जानता था। मैं नये देश को खो देने का असल कारण यही समझता हूं।

पहुंचता है जहां अपना ही महबूब आपको पूरी पनाह नहीं देता ?

सवाल जिन्दगी की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने का था। वह किसी बहुत बड़ी बुनियादी सफलता का नहीं था। पर रोटी-कपड़े के लिए साधन की जरूरत होती है। उसी साधन को खोजने के तरीके के बारे में हम एक-दूसरे से सहमत नहीं थे। शायद वह ही ठीक थी। मैं ही मानसिक उलझन में पड़कर अग्रैस्सिव हो गया था। मेरा अग्रैस्सिव हो जाना ही हमारे बिछड़ने का कारण बन गया।

अगर साधन में किसी जगह औरत का जिस्म खतरे में पड़ता हो तो मेरा खयाल है, वह अपने महबूब के रोष पर नाराज नहीं होती, बल्कि उसके मन में महबूब की कद्र बढ़ जाती है। आपका क्या खयाल है ?

साधन में जिस्म शामिल था, यही झगड़े की बुनियाद थी। मैं आपकी बात से सहमत हूं कि मेरे रोष से मेरी कद्र बढ़नी चाहिए थी···।

सो, बड़े सीधे लफ्जों में यह मुहब्बत आपकी एकतर्फा मुहब्बत बनकर रह गई—चाहे एक आर्थिक नुक्ते पर आकर।

हां—अन्त में एकतर्फा बन गई। आस्था रखने वाले भी राहों में उलझ जाते हैं। जिन्दगी एक संघर्ष होती है, महबूब के शाश्वत साथ के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है।

एक बड़ा सीधा सवाल पूछना चाहती हूं कि यह मुहब्बत चाहे अब एकतर्फा है, और चाहे कभी दोनों तरफ से थी, पर यह आपकी जिन्दगी की आपके लफ्जों में एक रहमत जरूर थी। आपने इसके लिए—'हजारों बरसों बाद महबूब का दीदार' फिकरा बरता है। पर आप उसीके लिए औरों के सामने बुरे शब्द क्यों बरतते हैं ? एक आशिक के दर्द की जबान तो खामोशी होती है।

मुझे आपने घेर लिया ? घबराहट से झुंझलाकर जल्दबाजी में मेरे जो

मुंह मे आता रहा कहता रहा । क्योंकि मैं अपने दिल के एहसासों की दुनिया में ज्यादा रहता था और जिन्दगी के यथार्थ की मजबूरियों को नहीं समझता था । किसी हद तक बाधाओं और तक्लीफों से भागता भी था । पर मेरे दिल में उसके लिए प्यार और आदर वैसा ही बना हुआ है ।'''वह मुझसे कहीं ज्यादा दूरंदेश थी । मुझ से कहा करती थी, "हम चाहे जिन्दगी में साथ रहें, या बिछड़ जाएं, पर एक बात कहती हूं, तुम लौटकर कभी छोड़े हुए देश मत जाना—वहां तुम्हारा निरादर होगा !"—वही बात हुई । मैं हारकर अपने त्यागे हुए देश चला गया—अपनी ब्याहता बीवी के पास, जो हर पल मेरी तौहीन करती है । वह सच कहती थी । जो संताप मैं भुगत रहा हूं, मैं ही जानता हूं । पर एक सवाल और मेरे मन में उठता है, अगर मैं तब गुस्सा न करता, वह जैसे भी रोटी के साधन को हासिल कर सकती थी, कर लेती । मैं शान्त रहता । क्या तब भी कुछ अर्से बाद हमारी मुहब्बत उसी ताव की रह जाती ? असल में उस वक्त एक टैस्ट होना था'''।

एक बड़ा दुखदायी सवाल पूछना चाहती हूं—जैसाकि सुना है, उसके आधार पर कि जिस मर्द से उस लड़की ने नये संबंध जोड़े हैं, आपने लड़की की चोरी से, उस आदमी से कई हजार रुपया क्यों लिया था ?

यह बिलकुल गलत है, सरासर गलत । उसकी नौकरी लगते ही एक खास मुश्किल के समय हम दोनों ने एक हजार रुपया लिया था, जो हमने लौटाने के इकरार से लिया था । पर हर कोई अपने-आपको सच्चा साबित करने के लिए अपने मुक्ते से बात को पेश करता है ।

फिर जो भी कोई बात को ऐसे मोड़-तोड़ सकता है, क्या वह मुहब्बत के काबिल हो सकता है ?

खास हालतों मे, जब कोई गलत या ठीक कदम उठा लेता [illegible] एने उठाए हुए कदमों को लोगों के सामने ठीक सिद्ध करने के लि[illegible] घड़ लेता है ।

यह एक आम इंसान का विश्लेषण हो सकता है, पर किसी आशिक दिल का नहीं। आखिर वह लड़की भी आशिक-दिल थी···।

सवाल विलकुल ठीक है, पर यह भी सच है कि मौत से ज्यादा भूख बुरी। आप वताइए—जब साहिवां ने मिर्जा के तीर छिपा दिए थे, और मिर्जा को बेआई मौत मरवा दिया था,—उसे आप क्या कहेंगी ? साहिवां भी तो आशिक-दिल लड़की थी···।

साहिवां को वाप-भाई का मोह था, और दूसरी बात यह कि उसने मिर्जा की मौत की कीमत पर तीर नहीं छिपाए थे। वह शायद सोचती होगी कि उसके वाप-भाई उसका मुंह देखकर मिर्जा पर हाथ नहीं उठा सकेंगे। पर आप वाली घटना में यह तीरों को छिपाने वाली बात नहीं है। यह अपने हाथों मिर्जा पर तीर चलाने वाली बात है···।

मेरा मतलव था कि मजबूरियों में फंसा हुआ इंसान कई गलत या ठीक कदम उठा लेता है, और फिर उन्हें जस्टिफाई करता रहता है।

सवाल लौट-फिरकर वहीं आ गया कि यह सब कुछ आम इंसान का विश्लेषण है—मुहव्वत करने वाले दिल का नहीं।

तकलीफें तो उसने भी मेरे लिए बहुत सही थीं—पर अगर आर्थिक संकट में आकर वह और तकलीफें सहने से थक गई, तो मैं उसे दोष नहीं दूंगा। अगर मैं उसे पूरी सामाजिक और आर्थिक हिफाजत दे सकता तो शायद ऐसा कुछ न होता, जो हुआ।

क्या इसका मतलब है कि महबूब के अस्तित्व से आर्थिक हिफाजत ज्यादा अहमियत रखती है ?

नहीं। पर शायद महबूब के तौर पर मेरे अस्तित्व में ही कोई कसर रही होगी। प्यास भी सच्ची होती है, परछाइयां भी किसी असलियत की ही पड़ती हैं, पर जो कुछ अधूरा रह गया, उसके लिए शायद दोष किसीको नहीं दिया जा सकता।

मलयालम लेखिका कमला दास की कलम से

पतझड़ का आरभ वह अपने पतझड़ मे उड़ती, पीली, एक पत्ते की तरह और स्वतन्त्र।

पतझड़ पीले होने का समय है। मैं जब अधेड़ उम्र में पहुंची तो एक सकोच के साथ, एक निराशा के साथ यह जाना कि मेरे शरीर का खाका ही बदल गया है। भले ही अभी प्रत्यक्ष कुछ भी नही है, शरीर की त्वचा खुरदरी हो गई है।

सवेरे तडके मैं मेज पर से ऐनक उठाकर शीशे मे अपने चेहरे का प्रतिबिम्ब देखा करती थी। उस समय मेरा चेहरा सबसे ज्यादा ताजा होता था। जैसे नरम रात ने, और उसके सपनों ने, मेरे चेहरे पर कुछ सुनहरी-सा बिखेर दिया हो। मेरे शरीर की त्वचा को ओस से कोमल कर दिया हो, पर पैंतीस वर्ष की उम्र के बाद मेरी रात मे मुश्किल से ही कोई सपना रह गया था, और अब जो चेहरा शीशे मे दिखाई देता था—बिलकुल उतरा हुआ था।

यह मेरे साथ क्या हो रहा था? क्या अब किसी बढ़िया मर्द को, शब्दों से या दृष्टि से किसी सन्तोषप्रद मुहब्बत के लिए मोह सकना सभव नही रहा था? क्या मेरा जादू उतर गया था?

पर अचानक, एक तूफान की तरह, उसने मुझे जीत लिया, वह, मेरी जिन्दगी का अन्तिम प्रेमी, जो सबसे ज्यादा बदनाम था, बादशाहो का बादशाह, जंगली पशु, एक हसीन काला मर्द…।

वह चर्चगेट की कपड़ों की एक दुकान से निकल रहा था, और मैं अन्दर जा रही थी—मैं उसकी ओर खिच-सी गई और उसे एकटक देखने लगी। हवा में उसकी अनेक प्रेम-कहानियां फैली हुई थीं,—उसके शारीरिक प्रताप की भी। वह मेरी आंखों में एक शानदार पशु-सा था।

उसने कई बार मुड़कर देखा, यह देखने के लिए कि मैं उसकी ओर क्यों एकटक देख रही हूं। मेरी शक्ल किसी 'निम्फो-मेनिएक' से नहीं मिलती थी। मैं हूं भी नहीं। मानसिक श्रम के कारण मेरा चेहरा गोल, चमकदार और खिला हुआ नहीं है। सादा चेहरा है, बहुत बादामी, और नखरीलापन मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है। वह मुझे अवश्य ही तुरन्त भूल गया होगा।

फिर एक लम्बी बीमारी आई। उससे गुजरी। स्वस्थ हुई तो फिर एक बार मेरा चेहरा आकर्षक हो गया। तब हवाई अड्डे पर उसे फिर देखा। उसकी हवस के कई किस्से सुन रखे थे। उसने मुझे ऐसे खींच लिया, जैसे एक सांप सम्मोहित शिकार को खींचता है। मैं उसकी गुलाम थी। उस रात बिस्तर में पड़ी मैं उसके गहरे सांवले अंगों के बारे में सोचती रही, उसकी आंखों के बारे में जो चाहत से भरी हुई थीं। जल्द ही हमारा मिलन हुआ और मैं उसकी बांहों में समा गई।

"तुम मेरे कृष्ण हो," उसकी बन्द आंखों को चूमते हुए मैं धीरे-धीरे कहती रही। वह हंस पड़ा। मुझे लगा—उसकी बांहों में लिपटी मैं अभी निपट कुंआरी हूं। क्या उसकी मुहब्बत के पतझड़ से पहले यह कोई ग्रीष्म है? उसके बदन की संध्या से पहले क्या यह एक सवेरा है? मैं कुछ जान नहीं पाई। मैं उसे अपने साथ अपनी आंखों की पलकों में ले गई—वह मेरी अल्हड़ उम्र के सपनों का खुदा था! रात को, शहर के सजीले फरेबी घरों की उसकी रखैलें उसके लिए तरसती थीं—ओ कृष्ण! ओ कन्हैया! मुझे छोड़कर किसी और के पास मत जाना!

जब उससे न मिल सकती, उसे पत्र लिखती। वह ऐसे पत्रों को तिरस्कार की दृष्टि से देखता था, कहता था, ऐसी भावुक मत बनो! ऐसे पागलपन के पत्र मत लिखा करो!

मुझे उससे दूर चले जाना चाहिए था, पर मैं उसके निकट रही,

उसकी अलोम छाती मे लगी, और अश्रु-सिक्त चेहरे को उसकी बांह की गहराई मे रखे हुए···।

उसके कमरे मे अठारह शीशे थे, अठारह तालाब, जिनमें मेरा गर्म गेहुआं बदन डुबकिया लगाता था। कमरे की परली तरफ एक बन्द बरामदा था, जहां खड़े होकर हम दोनो समुद्र को देखा करते थे। समुद्र हमारा एकमात्र साक्षी था। मैं कई बार धीरे से कहती—हे सागर! आखिर मुझे मुहब्बत मिल ही गई, मुझे मेरा कृष्ण मिल ही गया!

तुमने एक अबाबील को पालतू बनाया कि तुम्हारी मुहब्बत के
लम्बे ग्रीष्म में वह बैठी रहे।
वह न केवल बीनों दुखदायी ऋतुओं को बिसार दे,
और पीछे दूर छोड़े हुए घरों को और तो और—
अपने स्वभाव को भी, उड़ने की चाह को भी, और आकाश
के अनन्त पद को भी।
मैं—तुझ तक आई, एक और मर्द के अनुभव को जोड़ने के
लिए नहीं,
यह जानने के लिए कि मैं क्या हूं, और इस जानकारी में
विकसित होने के लिए।

बहुत-सी शहरी औरतों की तरह, मैंने भी थोड़े-से समय के लिए 'एडल्टरी' की कोशिश की, पर वह बे-मजा लगी। वह अब अपने कैरियर का उतार देख रहा था, जिसके कारण मुहब्बत से अधिक मुझमें उसके प्रति करुणा जाग उठी। उसके प्रशंसक अब उससे हट रहे थे। उसका टेलीफोन अब चुप रहता था। अब उससे रिआयतें नहीं मांगी जाती थीं। उसके गिर्द एक जलावतन बादशाह की उदासी झलकती थी। मैंने अपनी जिन्दगी उसके अर्पण करनी चाही, पर यह उपहार उसके लिए किसी मूल्य का नहीं था। उसे अपने बदन से लगाती तो वह मुंह-मुंह में बोलता—देख रहा हूं, गुबार उठ रहे हैं, दरवाजे गिर रहे हैं, दीवारें ढह रही हैं, सारे कानून मिट्टी में लपेटे जा रहे हैं, पर मैं शक्तिहीन हूं, इस देश के लिए कुछ नहीं कर सकता···।

जब हम गलबाहीं करते, हम उसके कमरे के अनेक शीशों के नीले

तालावों में डूव जाते—मृत्यु-मुक्त, वार-वार, परछाइयों की परछाइयां। किसी सपने का सपना। पर तव भी मुझे अपने शरीर के इस्तेमाल से नफरत थी। औरत के शरीर का आकार, एक खूवसूरत रिश्ते को वर्वाद करने के लिए दखलअंदाज हो रहा था।

मैं उदास होकर अपने-आपसे पूछती, क्या मेरा शरीर मेरे कोमल और समझदार मन पर सदा सवार रहेगा? पर फिर—जिस वात से सदा नफरत जागती थी, उसमें मैंने एक सुन्दरता खोज ली। उसकी तेज सांसों के क्षण, उसकी निश्चलता के क्षण, और वह मौन—जिसने कुछ समय के लिए, आत्मा के घावों को भर दिया। उसका शरीर मेरा कैदखाना वन गया। उसके परे कुछ भी दिखाई नहीं देता था। उसके अंधेरे ने मेरी आंखें वन्द कर दी थीं—और उसके प्यार के शब्दों ने समझदारी की दुनिया के शोर को खामोश कर दिया था।

वरसों वाद जव यह सव कुछ समाप्त हो गया, मैंने अपने-आपसे पूछा—मैंने उसे अपना प्रेमी क्यों चुना? उसकी प्यार करने की असमर्थता को जानती थी और अपने अन्तर से इसके जवाव खोजे। प्यार का आरंभ भी होता है, अन्त भी। केवल कामना में ऐसा कुछ नहीं होता। मुझे सुरक्षा की आवश्यकता थी, निरन्तरता की, मुझे अपने गिर्द मजवूत वांहों की आवश्यकता थी और कानों में किसीकी कोमल आवाज की। शारीरिक पूर्णता के पास एक विशेप प्रकार का गर्व होता है, जो आत्मा के लिए एक भार होता है। यह शायद मेरे शरीर के लिए आवश्यक था कि वह कई तरह से अपने-आपको मजवूर करे ताकि आत्मा गर्वहीन हो सके…।

मैं एक गर्वहीन औरत थी, जो अन्त में उसकी विलास-सेज से उठी, और परे को चल दी। अलविदा कहने के लिए भी पीछे मुड़कर नहीं देखा। मन उसी तरह एकाएक उठ उखड़ गया, जैसे कभी मेरे तन ने हामी भरी थी। मैं उसके भीतर कैंसर की तरह फैलना चाहती थी—चाहती थी, वह लाइलाज मुहव्वत का दुख सहे। यह निर्दय कामना उन औरतों की विशेप प्रकृति होती है जो मुहव्वत करती हैं। वह कहा करता था—तुम एक दीवानी लड़की हो, पर तुम्हारी दीवानगी की उम्र लम्वी

हो !

हां, यह सच है, मैंने उससे प्यार किया। पर उस पागलपन से नहीं, जैसा उसका खयाल था, मैंने पूरे होश से प्यार किया—यह तन की समझदारी भी थी, मन की भी। उसके जिस्म के पहले स्पर्श के साथ ही मेरे सारे पुराने आकर्षण, सारी चाहें मिट गईं। यूं था जैसे उसका जिस्म दुनिया में एकमात्र जानदार जिस्म रह गया हो। बाकी सब मौतें चुप थीं। ओ इज्जत-आबरू वाले मित्रो ! सदाचारियो ! अगर मैं गुनहगार हूं तो मेरा गुनाह माफ मत करना। अगर मैं निर्दोष हूं, तो मेरी निर्दोषता को भी माफ मत करना। रात को लाल रोशनियों के बीच मुझे जला देना। मेरी गर्वीली द्रविड़ काया को जला देना। सारी व्याकुलता को अन्त तक जला देना, या अपने पिछवाड़े वाले बगीचे में दफन कर देना, और सारी दरारों को बम्बई की लाल धूल से भर देना। और उनके बीच मेरी छाती के नीचे, कोमल पौधे बीज देना, क्योंकि वह और मैं जब मिले थे, बहुत देर हो गई थी, और हम अपने किसी बच्चों को जन्म नहीं दे सके। उससे मेरा प्यार ऐसा था, जैसे समुद्र में लहरों के ऊपर कुछ लिखा हो,—वह हवाओं में जन्मा गीत था…।

['माई स्टोरी' से]

सोनिया की डायरी

रूस के प्रसिद्ध लेखक लियो टॉल्स्टॉय के साथ सोनिया का विवाह २३ सितम्बर, १८६२ में हुआ था। विवाह के कुछ ही दिन बाद ८ अक्टूबर को सोनिया ने अपनी डायरी में लिखा, "कल से मैं बेहद डरी हुई हूं। कल जब उसने मुझसे कहा कि उसे मेरी मुहब्बत पर यकीन नहीं···मैंने बचपन से एक सपना संजोया था। एक पूरे मर्द का, जो मेरे लिए पूरा और शफ्फाक हो सके और जिससे मैं इश्क कर सकूं। ये बड़े बचकाने सपने थे, पर आज भी उस खयाल को त्याग देना मुझे बहुत मुश्किल लगता है। उस मर्द का खयाल, जो हमेशा मेरे साथ रहे, मैं जिसके छोटे-से-छोटे खयाल और बड़े-से-बड़े अहसास को जान सकूं। जो और किसीसे नहीं, सिर्फ मुझसे मुहब्बत करता हो—मेरी तरह। और जिसे अच्छा और बढ़िया होने से पहले गलत और जंगली रास्तों से गुजरने की जरूरत न पड़ी हो।"

यह इशारा टॉल्स्टॉय की उस डायरी की तरफ है, जिसमें उसने विवाह से पहले की जिन्दगी का ब्योरा लिखा था। और वह डायरी टॉल्स्टॉय ने सोनिया को पढ़ा दी थी। "मेरे खाविद का जो बीता वक्त था—जानती हूं, उसे मैं कभी कबूल नहीं कर सकूंगी···उस बीते हुए में अच्छे और बुरे हजारों अहसासों की वह दुनिया है, जो कभी भी मेरी नहीं हो सकेगी। खुदा जानता है, उसकी जवानी में क्या-क्या आया? कौन-कौन? वह सब कभी मेरा नहीं हो सकेगा। वह कभी नहीं जान

सकेगा कि मैं उसे अपना सब कुछ दे रही हूं···वह मुझे दुःख देकर खुश है—मुझे रुला के; क्योंकि उसे मुझपर यकीन नहीं है···मैं बहुत मजबूत बनूंगी कि कभी रोऊं नहीं। मैं नहीं चाहती कि वह देखे, मैं कैसे उदास हूं? कैसे किस दर्द से गुजर रही हूं? वह यही जाने कि मैं हमेशा खुश हूं। मैं उसे कभी यह देखने नहीं दूंगी कि मेरे अंदर क्या बीतता है। मुझे अब उसकी मुहब्बत पर यकीन नहीं होता। वह जब मेरे होंठ चूमता है, मैं अंदर-ही-अंदर सोचती हूं, 'मैं उसके लिए पहली औरत नहीं।'—और यह बात मुझे अंदर तक छील जाती है, कि मेरी मोहब्बत—जो पहली और आखिरी है—उसके लिए काफी नहीं हो सकती···"

ग्यारह अक्टूबर की तारीख में सोनिया ने अपनी डायरी में लिखा, "बेहद उदास हूं, और अपने ही अंदर, अपने ही वास्ते कुछ ढूंढ रही हूं। मेरा खाविंद बीमार है, मुश्किल स्वभाव का, और मुझसे मुहब्बत नहीं करता। जानती थी कि ऐसा ही होगा, पर तब भी पता नहीं था कि इस कदर भयानक होगा। पता नहीं लोगों ने कैसे सोच लिया है कि मैं बहुत खुश हूं। कोई नहीं जानता कि न तो मैं उसके लिए ही खुशी ढूंढ सकती हूं, न अपने ही लिए! जब बहुत उदास होती हूं तो सोचती हूं कि इस जिन्दगी में हम दोनों में से कोई भी एक खुश नहीं, ऐसी जिन्दगी जीने का क्या अर्थ है? यह विचार बार-बार आता है, और मैं डरी हुई हूं। उसका बर्ताव दिन-पर-दिन सर्द पड़ता जा रहा है, जबकि मैं उसे पहले से भी बढ़कर प्यार कर रही हूं।···उसकी बेरुखी बहुत जल्द ही हद से बाहर हो जाएगी···मैं अकसर अपने लोगों के बारे में सोचती हूं (मां-बाप के घर को) कि मैं वहां कितनी खुश थी! और, अब दिल टूटा जाता है, कि कोई भी मुझे प्यार नहीं करता! मां और छोटी बहन कितने अच्छे स्वभाव की थीं। मैं उन्हें छोड़कर क्यों आ गई? आज उन्होंने (टॉल्स्टॉय ने) मुझसे कहा कि मैं घर में रहूं, उसे बाहर जाना है। मुझे मान जाना चाहिए था, ताकि वह मेरी हाजिरी से छुटकारा पा सके, पर मैं बहुत मजबूत साबित नहीं हुई। अब दूसरी मंजिल से उसकी आवाज आ रही है। वह उलगा के साथ मिलकर गा रहा है। वह मुझसे दूर होने के लिए कोई-न-कोई दिलचस्पी ढूंढ रहा है। मैं इस

दुनिया में किस वास्ते हूं ?"

अगली किसी तारीख में सोनिया ने लिखा, "उससे अपने मन की बात करके बहुत हलकापन महसूस करती हूं। पर मेरा स्वाभिमान उसको (टॉल्स्टॉय को) दुखाकर कुछ तसल्ली ढूंढ़ता है। मैं अपने लिए कोई व्यस्तता नहीं ढूंढ़ सकती। वह खुशनसीब है कि उसके पास हुनर है, बुद्धिमत्ता है। मेरे पास दोनों में से कुछ भी नहीं। कोई भी सिर्फ मुहब्बत के आसरे नहीं जी सकता। मैं इतनी पगली हूं कि उसके बारे में सोचने के सिवा कुछ भी नहीं कर सकती। अकेले होना कितना भयानक है। मुझे इसकी आदत नहीं थी। मेरा पहला घर किस तरह जिन्दगी से भरा हुआ था, पर यहां जब वह नहीं होता। हर चीज मरी हुई लगती है। उसे एकांत में रहने की आदत है। एकांत उसके लिए सहज है, इसलिए वह नहीं समझ सकता। वह आसपास के लोगों में तसल्ली नहीं ढूंढ़ता, वह अपने काम में तसल्ली ढूंढ़ता है। पर जब मैं कहती हूं कि मुझे अकेला रहना अच्छा नहीं लगता—तो उसे इस बात पर गुस्सा आ जाता है। मेरे पास कोई कल्पना नहीं, इसलिए उकताहट है। मुझे जिन्दगी की रौनक की आदत थी और यहां एक भयानक चुप के सिवा कुछ भी नहीं। पर इस सबकी मुझे आदत पड़ जाएगी। इंसान को किसी भी चीज की आदत पड़ सकती है। वक्त के साथ-साथ मैं और यह घर दोनों भर जाएंगे। मेरा अस्तित्व व्यस्तता से भर जाएगा। मैं बच्चों के अस्तित्व और उनकी खुश जवानी में खुशी ढूंढ़ लूंगी।"

और इस तरह दिनों, हफ्तों और कई बार महीनों के अंतर पर सोनिया पूरे अड़तालीस बरस अपनी डायरी लिखती रही। सोनिया ने टॉल्स्टॉय से कभी यह डायरी छुपाई नहीं थी। कई बार कई पन्नों पर टॉल्स्टॉय ने अपने रिमार्क्स भी लिखे थे। पर यह सब कभी किसी तीसरे की नजर में नहीं पड़ा। सोनिया के भाई के शब्दों में, "दोनों के आपस में संबंध, आपस में दोस्ती और दोनों का आपस में प्यार, मेरे लिए विवाहित जीवन की खुशी की एक मिसाल था।" हर मित्र और रिश्तेदार के लिए यह विवाह, एक आदर्श विवाह था।

सोनिया और टॉल्स्टॉय की जिन्दगी का यह दुःखांत सिर्फ अंदर-ही-

अंदर घुटा था। कभी उभरकर उपरली सतह तक नही आया। यह सिर्फ टॉल्स्टॉय की जिन्दगी के आखिरी दिन थे, जब यह दुखांत एक लावा बनकर बाहर आ गया था। टॉल्स्टॉय ८२ साल का था, जब वह घर को त्यागकर बेघर हो गया था।

विवाह के विषय मे टॉल्स्टॉय के अपने शब्द थे, "जो लोग इस तरह के नॉवल लिखते हैं—जिनका अंत विवाह होता है, जैसे इस सुखद अंत के बाद कहने के लिए कुछ भी न रह गया हो, वह काफी मूर्खता फैलाते हैं। अगर विवाह की तुलना किसी चीज से की जा सकती है तो जनाजे से। *एक आदमी अच्छा-भला अकेला चला जा रहा होता है।* अचानक दो सौ पौंड का भार उसके कधो पर रखकर सोचा जाता है कि वह इस भार को खुशी से लिए रहे।"

असल मे सोनिया और टॉल्स्टॉय का दुखांत, उनकी अलग-अलग स्तर की मानसिक अवस्था थी। सोनिया की डायरी के कई पन्ने गवाही भरते हैं, जिनमे से एक १८६७ का भी है, "सब कुछ खो गया है। हर चीज ठंडी और बेमानी हो गई है। मुझे अकेली को भी डर लगता है, और उसके करीब जाने से भी डर लगता है। वह जो कुछ बोले, उसपर मैं गुस्सा भी करूं—पर वह कुछ भी नही कहता। वह अब गुस्सा भी नही करता। यह सब कुछ सहा नही जाता। मुझे कुछ नही चाहिए। सिर्फ उसका प्यार और उसकी हमदर्दी चाहिए। वह यही मुझे नही देता है। मेरा सारा मान मिट्टी में मिल गया है। मैं कुछ भी नही रह गई। सिर्फ एक कुचला हुआ कीड़ा। एक बेकार की चीज, जिसका सुबह-सुबह जी मिचलाता है—और जिसका पेट बढ़ा रहता है (बच्चे की आमद की वजह से) और यह सब मुझे पागल बनाए दे रहा है।"

फिर फरवरी, १८७३ का एक पृष्ठ है, "वह मॉस्को गया है। मैं यहा सारे दिन एक शून्य को तकती रहती हू। फिक्रो से भरी हुई। मन की सारी उदासी को डायरी मे उडेलने लगती हू। बडे मूर्खता-भरे खयाल आते है—बुरे भी, दुखदायी भी और गैर-ईमानदार भी। मैं, जिसके खयाल हर चीज के बारे मे बेहद पाक होते थे, बड़े ऊचे, अब परेशानी के वक्त खुद से पूछती हूं कि आखिर मैं चाहती क्या हू? और अपने ही जवाब

ने मैं घबरा जाती हूं। मैं रौनक से भरा वक्त चाहती हूं। कोई खुशनुमा साथ, और नई पोशाकें, जिन्हें पहनूं तो लोग मेरी तारीफ करें, मेरे हुस्न की तारीफ और लियो सुनता हो, यह सब देखता हो। बहुत साधारण लोगों की तरह जीना चाहती हूं···।"

और दूसरी तरफ टॉल्स्टॉय जिन्दगी के अर्थों को खोजना चाहता था। जिन्दगी की *अर्थहीनता को सोचता, वह आत्महत्या की भी सोचता था।* उसने अपनी बंदूकें छुपाकर रख छोड़ी थीं, कि किसी वक्त उसके हाथों ही, खुद अपने ऊपर ही न चल जाएं।

'एन्ना कैरानीना' उपन्यास की सीमा से बढ़कर प्रशंसा हुई थी। इससे टॉल्स्टॉय को एक पीड़ा हुई, क्योंकि यह उपन्यास उसकी अपनी नजरों में बेहद घटिया था। इतना कि उसके प्रूफ देखने भी उसने गवारा नहीं किए। एक दोस्त को उसने खत लिखा कि असल में, उसे या तो उस उपन्यास को सुधारना चाहिए था ; या उसे फाड़ देना चाहिए था। यह भी लिखा, "मैं इस तरह का उपन्यास लिखने की गलती फिर नहीं करूंगा।"

टॉल्स्टॉय को अपनी अमीरी एक गुनाह लग उठी थी। वह कई बार कहता, "अमीर लोग अपने आरामदेह कमरों में बैठे हुए हैं जबकि कल एक आदमी सड़क पर बर्फ में जमा हुआ मिला था। वे केक और लेट्स खा रहे हैं, जबकि हजारों लोग भूखे मर रहे हैं। वे अपने गर्म कमरों में नृत्य कर रहे हैं, जबकि उनके कोचवान, जीरो से भी तेरह डिगरी नीचे के सर्द मौसम में, सड़कों पर कड़कड़ा रहे हैं।"

यह टॉल्स्टॉय की स्व-परीक्षा का समय था कि वह क्या-क्या त्याग सकता है। उसने सिगरेट छोड़ दी, शिकार खेलना छोड़ दिया, मांस खाना छोड़ दिया, शराब छोड़ दी, अपना खिताब छोड़ दिया, और थियेटर जाना छोड़ दिया। पर जब उसने अपनी जायदाद भी छोड़नी चाही तो सोनिया और बरदाश्त नहीं कर पाई। टॉल्स्टॉय एक चिंतक था, एक फनैटिक नहीं। वह अपने खयालों को दूसरों पर जबरदस्ती लादता नहीं था। इसलिए जब सोनिया घबरा गई, तो उसने सब कुछ उसके नाम करना चाहा। यह १८८४ की बात है। टॉल्स्टॉय ने अपनी

किताबों के हकूक भी सोनिया के नाम करना चाहे, कहा, "यह भार अब मुझसे बरदाश्त नहीं होता।" उस समय सोनिया जायदाद को छोड़ना नहीं चाहती थी, पर अपनी पदार्थवादी रुचि को वह टॉल्स्टॉय की आदर्शवादी रुचि के आगे मानना भी नहीं चाहती थी, इसलिए सोनिया ने कहा, "फिर यह भार मैं क्यों उठाऊं?"

जब वह घड़ी गुजर गई तो सोनिया घबरा गई। उसने कहा कि यदि वह अपनी जायदाद त्यागेगा तो वह यह साबित करेगी कि टॉल्स्टॉय अपने होशो-हवास में नहीं है। इसका हल टॉल्स्टॉय ने इस तरह किया कि सारी जायदाद सोनिया और बेटे-बेटियों के बीच बांट दी। सोनिया ने उसकी रचनाओं के प्रकाशन की, 'पावर ऑफ अटॉर्नी' भी लिखवा ली।

सोनिया को पता नहीं था कि उसने, सारी दुनिया की नैतिकता का भार, अपने कंधों पर ढोने वाले, एक इंसान के साथ विवाह किया है, और यही उसका दुःखान्त था।

टॉल्स्टॉय की डायरी में लिखा मिलता है, "मैं जब तक जीता रहूंगा, वह मेरी गरदन के गिर्द रस्सी से बंधे पत्थर की तरह पड़ी रहेगी।"

१८८४ में जब सोनिया फिर गर्भवती हुई थी, उसने गर्भपात के इतने पागल यत्न किए कि टॉल्स्टॉय ने घबराकर कुछ चीजें बोरी में रख लीं, और बोरी अपने कंधे पर रखकर, घर से निकल पड़ा। कहा, "मैं अमेरिका या कहीं और जा रहा हूं, फिर कभी लौटकर नहीं आऊंगा—" पर वह अमेरिका की राह में से ही लौट आया था। उसने महसूस किया कि सोनिया को इस हालत में अकेले छोड़ जाना उचित नहीं था। पर १८८५, में उसने सोनिया से तलाक मांगा। तलाक की बहस में टॉल्स्टॉय के मुंह से निकला, "तू जहां भी रहेगी, वहां की हवा जहरीली हो जाएगी।" और इसी तेज आवाज की बहस ने सारे बच्चों को जगा दिया, जो ऊंची-ऊंची आवाज में रोने लगे। उनका रोना सुनकर टॉल्स्टॉय भी रोने लगा। इस तरह तलाक वाली बात बीच ही में रह गई थी।

सोनिया ने भी, एक बार 'एन्ना केरिनीना' की नायिका की तरह

रेलगाड़ी के नीचे आकर मरने की सोची थी, पर उसकी बहन तानिया के पति ने उसका यह खयाल बदल दिया।

इसी तरह एक बार टॉल्स्टॉय ने कहानी लिखी, 'मास्टर एण्ड मैन'···और किसी पत्रिका को भेजनी चाही, पर सोनिया के पास प्रकाशन के हक थे, इसलिए उसने यह कहानी अपने लिए मांग ली। इस बहस में टॉल्स्टॉय ने घर को छोड़ना चाहा, पर सोनिया ने उससे भी बड़ा कदम उठा लिया, और नंगे पांव, जंगल की बरफ पर मरने के लिए दौड़ पड़ी। इस समय उसकी बेटी ने उसे बचा लिया।

सोनिया जब बड़े उहलाने के साथ कहती, "मैंने तेरे लिए हर चीज कुरबान कर दी। तूने मुझे ब्याहा था, एक पवित्र सत्रह वर्ष की लड़की को, बच्ची जैसी को···'तो टॉल्स्टॉय उसकी बात टोककर कहता, "हां! हां! सारे कसूर मेरे हैं! मैं ऐयाश हूं, व्यर्थ! तूने ही सारी कुरबानियां दी हैं। एक और भी कर कि मुझे छोड़ दे।"

टॉल्स्टॉय अपनी सब किताबों के और डायरियों के हकूक, अपने देश के लोगों के नाम करना चाहता था, और यही सोनिया को मंजूर नहीं था। जब टॉल्स्टॉय ने अपने एक दोस्त के साथ मिलकर सोनिया से चोरी-चोरी अपनी किताबों की वसीयत तैयार की, उस वक्त सोनिया ने हवा में कुछ गंध पा ली, और कहा, "ईसा, सुकरात और उन जैसे लोगों को कुछ छिपाने की जरूरत नहीं पड़ती—जो छुपाते हैं···वे मुजरिम होते हैं, चोर होते हैं—चरित्रहीन होते हैं।"

टॉल्स्टॉय के मित्र के लिए सोनिया के लफ्ज थे, "उस मोटे को मैं चाकू से मार डालूंगी।"—पर वह चरतकोव, टॉल्स्टॉय का सच्चा मित्र था, उसने सिर्फ इतना ही कहा, "अगर मेरी बीवी, इसकी तरह होती, मैं कब का खुद को गोली मारकर मर गया होता, या उसके पास से भागकर अमेरिका चला गया होता।" और उसने कहा, "मैं इसके जैसी औरत को नहीं समझ सकता, जिसने अपनी पूरी जिन्दगी, अपने पति को कत्ल करने में लगा दी हो···"

१२ जून, १९१० को जब टॉल्स्टॉय अपने उसी मित्र से मिलने के लिए गया तो सोनिया ने उसे घबरा कर तार दिलवाया कि "उसे सख्त

नर्वेस अटैक हो गया है, बेहोशी भी है, नब्ज सौ की गिनती तक पहुंच गई है…" और टॉल्स्टॉय के वापस आने से पहले उसने एक हजार पांच सौ लफ्ज़ों की एक इवारत अपनी डायरी में लिखी, 'मौत से पहले एक दस्तावेज' और टॉल्स्टाय के लौटने पर उसने जहर खाकर मरने की धमकी दी।

टॉल्स्टॉय ने जब फिर सोनिया को छोड़ना चाहा, उसकी एक ही धमकी थी, कि वह आत्महत्या करके टॉल्स्टॉय को पूरे रूस मे बदनाम कर देगी। उस वक्त टॉल्स्टॉय ने फिर हार मान ली, और इकरार किया कि वह सारी डायरियां, अपने दोस्त के पास से लाकर उसे दे देगा।

यह वक्त, शायद सबसे भयानक वक्त था, जब सोनिया ने उसके ऊपर, 'मर्दों की मुहब्बत' का इल्जाम लगाया था। टॉल्स्टॉय जैसे पत्थर हो गया था। उसने अपने सोने वाले कमरे में जाकर अंदर की सारी कुंडियां बंद कर लीं—और किताबों वाला कमरा भी। उस रात सोनिया ने अपनी डायरी मे लिखा, "कहां है मुहब्बत ? कहां है क्रिश्चिएनिटी ? और सबसे बड़ी बात, कहा है इंसाफ ?" साथ ही उसने टॉल्स्टॉय के नाम एक खत लिखा, 'अलविदा' और साथ ही प्रेस के नाम एक खत लिखा, कि यासनाया पोलिआना मे आज एक अजीब घटना घटी है, काउंटेस, अपना वह घर छोड़कर जा रही है, जहां अड़तालीस बरस उसने अपने पति की, हर तरह से परवाह की थी।

पर सोनिया ने घर नहीं त्यागा। टॉल्स्टॉय के कमरे में जाकर, उसके दोस्त की तस्वीर हटाकर, उस जगह उसने पवित्र जल छिड़का। पर जब टॉल्स्टॉय ने वह तस्वीर उसी जगह फिर रख दी, तो सोनिया ने उसे उतारकर आग के हवाले कर दिया।

इन्हीं दिनों, टॉल्स्टॉय का पूरा लेखन छापने के लिए, एक प्रकाशन से दस लाख रूबल की पेशकश आई थी, सोनिया टॉल्स्टॉय की वसीयत से खौफजदा थी—क्योंकि वसीयत के अनुसार उसके सारे लेखन पर उसके देश का हक था। सोनिया हर पल एक जासूस की तरह टॉल्स्टॉय के आसपास रहने लगी।

यही दिन थे, जब टॉल्स्टॉय बीमार होकर पलंग से लग गया।

२० अक्टूबर की बात है, जब एक किसान दोस्त मिखाइल पैतरोविच नोविकोव, टॉल्स्टॉय से मिला, जिसके आगे, उसने इकबाल किया, "मैं यहां, इस घर में नहीं मरना चाहता, शायद तेरी झोंपड़ी में मरने के लिए आऊंगा। यहां मैं नरक की आग में झुलस रहा हूं। ये लोग मेरी कीमत रूबलों में तोलते हैं। मैंने हमेशा यहां से चला जाना चाहा था—कहीं भी, किसी जंगल में, या चौकीदार की झोंपड़ी में। पर खुदा ने कभी मुझे इतनी हिम्मत नहीं बख्शी। यह मेरी कमजोरी थी—मेरा गुनाह…"

१९१०, अक्टूबर की २६ तारीख थी—जब सोनिया ने उस खत के बारे में पूछा जो टॉल्स्टॉय के उसी मित्र से आया था, जिसकी तस्वीर सोनिया ने जला दी थी। उस रात टॉल्स्टाय से बरदाश्त नहीं हुआ। उसने अपनी बेटी को बुलाकर कहा, "मैं इस जासूसी से तंग आ चुका हूं। अब और बरदाश्त नहीं होता, इस तरह किवाड़ों के पीछे खड़े होकर बातें सुनना, इस तरह हर वक्त मेरे कागजों को टटोलना," और २८ तारीख की रात को उसने देखा कि सोनिया, उसकी किताबों वाले कमरे को खोल रही है। उस दिन उसका दिल हिकारत से भर गया।

उस रात, जब सोनिया सो गई, तो वह दबे पांव उठा, और उसके कमरे की कुंडी बंद करके, पास के कमरे में जाकर उसने अपनी बेटी को जगाया। कई रचनाओं की पांडुलिपियां, उसके हवाले कीं। सिर्फ एक डायरी अपनी जेब में रख ली। बेटी से शांत रहने और कुछ कपड़े बांधकर तैयार करने के लिए कहा। खुद ही अंधेरे में जाकर कोचवान को जगाया। बग्घी तैयार करवाई, और एक दोस्त दुशान को लेकर, रात के अंधेरे में स्टेशन को चला गया।

स्टेशन तक पहुंचने में सुबह के पांच बज गए। पता लगा कि गाड़ी आने में अभी डेढ़ घंटा रहता है। यह डेढ घंटा टॉल्स्टॉय के लिए बहुत भारी था। लगता था, कि किसी भी पल उसके दुश्मन आ जाएंगे। आखिर गाड़ी आ गई—पर यह रूस के जाड़ों की कड़कड़ाती सर्दी थी, जो उसके शरीर में उतर गई। उसने, अगले सवेरे बहन के गांव जाकर उसको डायरी सौंप दी। वहां से अपनी बेटी को एक खत भी लिखा।

वापसी डाक से सोनिया का खत भी आया, एक बेटे का भी, पर साशा खुद ही आ गई, अपने पिता की खिदमत के लिए। टॉल्स्टॉय को डर लगा कि अब यहा बहन के गाव में रहना संभव नहीं हो पाएगा। यहा उसका पीछा किया जाएगा, इसलिए एक सुबह, चार बजे बेटी को जगाकर सामान बाधने के लिए कहा। अब कहीं भी जाना था—बुलगारिया या किसी और देश। जाना जरूरी था। सात बजे दक्षिण को जाने वाली एक गाड़ी आई। टॉल्स्टॉय उसमें बैठ गया। उस दिन की ठंड उसकी हड्डियों तक में उतर गई थी, और उसे तेज बुखार चढ आया।

अगले स्टेशन पर गाडी को बहुत देर तक रुकना था, इसलिए उसके दोस्त दुशान ने स्टेशन-मास्टर से इस हालत में टॉल्स्टॉय को उसके कमरे में ले आने के लिए पूछा—स्टेशन मास्टर के लिए, यह उसकी इज्जत अफजाई थी। उसने घर के दो कमरे खाली कर दिए। बुखार से तपते, और बयासी बरसों की उम्र से थके हुए, उसके होंठों से धीमी-सी आवाज निकलती थी, "यहा से चलो, ...वह आकर पकड लेंगे।"

मास्को से डाक्टर बुलवाए गए, और वह छोटा-सा स्टेशन, रूस के सारे अखबारों के नुमाइंदो से भर गया।

नवंबर की दो तारीख थी, जब टॉल्स्टॉय का जिगरी दोस्त चरतकोव भी आ गया। साथ ही एक तार भी आ गया कि कॉउटेंस सारे परिवार के साथ एक स्पेशल गाडी से आ रही है।

काउटेंस पहुंच गई। पर उसे उस कमरे में जाने से रोक दिया गया, जहा टॉल्स्टॉय आखिरी सासें ले रहा था।

छ नवम्बर की रात टॉल्स्टॉय की जिन्दगी की आखिरी रात थी। अखबारों के नुमाइंदो ने जब सोनिया का इंटरव्यू लिया, तब उसने कहा, "टॉल्स्टॉय ने अपनी इश्तिहारबाजी की खातिर घर छोडा था।"

['मैरिज एंड जीनियस' से]

आवाज की मलिका सुरिन्दर कौर

शायरी और संगीत का हश्र तक का रिश्ता है, सुरिन्दरजी ! यह असल में वज्द[1] का रिश्ता होता है। हमारे सूफी शायर नाच-गाकर शायरी करते थे। प्राचीन यूनानी शायरी के बारे में खास तौर पर कहा जाता था कि शायरी एकान्त में बैठकर पढ़ने के लिए नहीं होती। यूनानी शायरी का संबंध सदा सामाजिक कार्यों के साथ माना जाता था।···पर, सुरिन्दरजी ! हम आज के शायरों के पास आवाज नहीं है, हम लोग अपने दिल-दिमाग को सिर्फ कागजों पर उतार सकते हैं, आप हमारे अक्षरों को सुर दे देती हैं, अक्षरों को कागजों पर से उठाकर आवाज की दुनिया में ले आती हैं···आपने इस शोक की सुराही से पहला घूंट कब भरा था ?

१९४३ की बात है, ३० अगस्त की।

इस तारीख का जरूर कोई इतिहास होगा।

तारीख इसलिए याद रह गई, क्योंकि उस दिन मैं बच्चों के प्रोग्राम के लिए लाहौर रेडियो पर ऑडीशन देने गई थी।

तब उम्र कितनी थी ?

---

१. आत्म-विभोर होने की अवस्था।

तेरह साल। मेरा जन्म २५ नवम्बर, १९३० में हुआ था।

सो, आवाज की मलिका को अपनी बादशाहत का एहसास तेरह बरस की उम्र में हो गया था ?

प्रकाश, मेरी बहन, बड़ी थी, वह गाती थी। बस, वही सुर कानो मे पड़े।

और कानों ने अपनी किस्मत पहचान ली।

एक बात बताऊं। उन दिनों हमारे घरों मे लड़कियो को गीत नही गाने देते थे। कहते थे, लड़किया सिर्फ भजन गाती हैं।

पर जब आप बच्चों के प्रोग्राम के लिए ऑडीशन देने गईं, वहां भजन गाना था ?

घर मे न गीत की इजाजत मिलती थी, न ऑडीशन की। रिश्तेदार यहां तक नाराज थे मेरे माता-पिता से कि आप अपनी लड़कियो से मीरासियों का काम करवाने चले हैं। पर मेरे भाई साहब थे, उन्होंने बहनों की मदद की, ऑडीशन भी दिलवाई, और गीत गाने की इजाजत भी लेकर दी।

सो, पहले गीत बच्चो के प्रोग्राम में गाए ?

नहीं, उन्होंने ऑडीशन लेकर मुझे सीधे जनरल प्रोग्राम मे ले लिया।

तब आपके उस्ताद कौन थे ?

मास्टर इनायत हुसैन से मैंने सन् ४४ मे सीखना शुरू किया था। उस जमाने में लोग लड़कियों पर पैसा नहीं खर्चते थे। पर मेरे पिताजी ने मुझे शास्त्रीय संगीत की शिक्षा देने के लिए उस्ताद साहब को डेढ़ सौ रुपया महीना देना भी मान लिया। वह भी महीने के पंद्रह दिनों का, क्योंकि उन्होंने एक दिन छोड़कर आना मंजूर किया था, वह भी एक घंटा। पर मेरा शौक देखकर सारी शर्तें भूल गए। आते तो तीन-तीन घंटे सिखाते रहते। कई बार रोज आ जाते।···उधर रेडियो पर गाने लगी तो

पहले पंद्रह रुपये एक प्रोग्राम के मिलते थे, फिर उन्होंने पांच छः महीने बाद तीस रुपये कर दिये। एक साल के बाद पचास रुपये कर दिये।

आपने, सुरिन्दरजी ! हिन्दी गीत भी गाए, पंजाबी भी फरमाइशों पर गाए, पर पंजाबी शायरी में से वह पहला गीत कौन-सा था, जो आपने अपने शौक से गाया ?

पहला गीत आपका ही था, अमृताजी ! मुझे अभी तक याद है, शायद आपको याद न हो, वह था "जानी सईए (सखी), पीवल (की ओर) जा !" फिर सोलह बरस की थी जब सगाई हुई। सोढी जोगिन्दर ने मेरे पास बैठ कर जो पहला गीत गाया, वह भी आपका था, "निम्मी-निम्मी तारेआँ दी लोअ···" (मद्धिम मद्धिम तारों की लौ)।" मैंने उसी समय याद कर लिया और फिर रेडियो पर गाना शुरू कर दिया। लाहौर रेडियो पर आपका यह गीत मैंने बहुत बार गाया।

सुरिन्दरजी ! पंजाबी की प्राचीन शायरी में से कौन-कौन-से शायर आपने शौक से गाए हैं ?

मैंने सारे ही गाए हैं···शैख फरीद, गुलाम फरीद, बुल्ले शाह, वारिस-शाह, कादिर यार, शाह हुसैन···मैं उनकी शायरी पर फिदा हूं। असल में, अमृताजी ! मैं कुछ धार्मिक खयालों की भी हूं···।

सो, सूफी शायर खास तौर पर अच्छे लगते होंगे···भला आपने अकेले में, या घर के किसी काम में लगे हुए उनकी सतरें कभी गुनगुनाई हैं ?

बुल्ले शाह की शायरी से मुझे बहुत उंस है। कब कौन-सी सतर मुंह से निकलती है, यह तो उस घड़ी की अपने मन की खुशी या उदासी की बात होती है। उदास शायरी अन्तर में उतर जाती है। शिव का गीत मेरे होंठों पर कई बार अपने-आप आ जाता है—"लोक्की पूजण रब्ब, मैं तेरा बिरहड़ा···"[1] या मोहन सिंह का "माहीआ वे साड्डे

---

१. लोग ईश्वर को पूजते हैं, मैं तुम्हारे विरह को···।

नाल कढ़िआं कीतिआं, अजनी यार न दरसाओ वी ना कीतिया'''
और या आपका यह गीत, "सानूं तंमबिरंबड़े नी वे मे परदेसीया।
मां रहि पत्रों साड्डे कोल'''"

> कई लोकगीत होंगे जो आपने लोगों की फरमाइश पर नहीं, अपने मन की फरमाइश पर गाए होंगे?

एक तो था, "नी अड़ियो काग बनेरे ते बोलया'''"

> "औसियां पांवी वा मेरा नरम कालजा डोलया'''" यह गीत लोगों के मुंह पर भी चढ़ गया था'''

एक और है, "मधाणियां हाए ओए मेरे डोलया रब्बा। किह नी जोरिया। किहा ने मैं जाणियां'''" गाती हूं तो जैसे यह गीत मेरे अन्दर से फूट-फूटकर निकलता है। शायद इसीलिए कि मेरे गीत बोलता है, अपनों बिछड़ जाने का दर्द शुरू से ही मेरे अन्दर से पका हुआ है। यूं तो गाना है, जब प्रकाश बहन जी का ब्याह हुआ, मैंने तो जोर से गाया करती थी, "माया ने धीयां रब दीकिया कर दिया परदेसियां'''" और इस पुत्री वेटिया मां के सीने पर इतना नरमी थी।'''सारे दर्द मगर आने पर ही पता लगते हैं।'''असल में, अमृता जी! मैं बहुत जज़बाती हूं। जानती भी हूं कि बहुत जज़बाती होना अच्छा नहीं होता, पर मैं जो हूं सो हूं।

> आपके लोकगीत पंजाबी शायरी का खजाना इसी रूप में।

---

१. ऐ माही! तूने हमारे साथ क्या किया, [illegible]
न की।

२. [illegible]

३. [illegible]

४. [illegible]

५. [illegible]
[illegible]

६. [illegible]

वह सिर्फ मेरी जिन्दगी का साथ नहीं थे, मेरे हुनर का भी थे, और मेरी समझ का भी। एक-दो बार मैंने स्टेज पर हल्के गीत गाए, लोगों की फरमाइश थी। सोढीजी कितने ही अर्से तक मुझसे लड़ते रहे कि तुम्हारे मुंह से हल्के गीत अच्छे नहीं लगते। फिर शायरी के कई संग्रह लाकर वह मुझे सुनाते रहे, नज्में चुन-चुनकर देते रहे। मुझे याद है—आपकी नज्म 'मैं तां जनम जली' गाने के लिए वह बहुत ही जोर देते थे, उसकी एक-एक सतर उन्होंने मुझे समझाई। सोढीजी का वियोग मुझे मार गया है।

सूफियों का कलाम गाने में, सुरिन्दरजी ! आपको खास महारत होगी ?

मुझे असल में, अमृताजी ! गुरुबानी बहुत पसंद है। वह जब गाती हूं, मन की अवस्था पता नहीं कहां-की-कहां पहुंच जाती है।

आपकी आवाज के कई एल० पी० बने होंगे, गुरुबानी का भी बना है ?

'शबदों' के ई० पी० कई बने हैं...।

यानी बारह-बारह मिनट के। एल० पी० तो चालीस मिनट का होता है ...।

जी हां।...यह रिकार्डिंग मैं सन् ४४ से कर रही हूं। अब तो यह भी याद नहीं कि कितने रिकार्ड बन चुके हैं।

सुरिन्दरजी ! आपकी बेटियों में से कोई आपके हुनर को विरसे में ले सकेगी ?

तीनों को शौक है। बड़ी डॉली तो रेडियो पर गाती है, छोटी अभी बाहर नहीं गातीं।

सुरिन्दरजी ! इस मर्तबे पर पहुंचकर आप अब भी अभ्यास की जरूरत समझती हैं या नहीं ?

अभ्यास तो मैं जिस दिन न करूं, ऐसा लगता है कि सवेरे से अन्न का दाना मुह मे नही डाला है···यह संगीत मेरा अन्न है···।

शायरी हम लोगों का अन्न-दाना, और संगीत आपका—यह तो हमारी साझे की रोटी है, सुरिन्दरजी ! ···मिलकर खाने वाली ···अच्छा, बताइए, किसी मुहब्बत का भी आपके हुनर पर कोई खास प्रभाव है ?

अमृताजी ! जिन्दगी मे मैंने कोई ऐसी मुहब्बत नही की जो मेरा दर्द बनी हो। पर एक दर्द है, पता नही किसका और कब का ?···पहले शायद सिर्फ कल्पना था, अब सोढीजी के चले जाने से हकीकत हो गया है। अब न हसा जाता है, न कही दिल लगता है। सोढीजी मरकर मेरे भगवान बन गए है। जिन्दगी मे सोढीजी को एक ही शौक था—मैं अच्छे से अच्छा गाऊ। कई बार समझाते भी इस तरह थे, जैसे मैं कोई बच्ची होऊ। सिर्फ एक बार···एक बार सोढीजी ने स्टेज पर मेरा माथा चूम लिया था, कहा था, "आज पता लगा है, तुम कितना अच्छा गाती हो।" उस दिन दिल्ली खालसा कालिज मे मेरे गीतो की शाम मनाई गई थी। मैं अकेली गाने वाली थी, दो घंटे गाती रही। उस दिन रंधावा साहब समारोह के प्रधान थे—महिन्दरसिंह रधावा। उन्होने कहा था, "मैं तो, बेटी ! तुम्हे यही असीस दे सकता हू कि मेरी उम्र भी तुम्हे लगे।"—और यह सुनकर मेरे सोढीजी का मन भर आया था, और उन्होंने स्टेज पर आकर मेरा माथा चूम लिया था···।

आपको तो, सुरिन्दरजी ! संगीत की उम्र लगेगी। पंजाबी शायरी की आवाज बन सकने के नाते आपकी आवाज तारीखी (ऐतिहासिक) है।

एक प्यारी आवाज : सरला कपूर

सरला ! लोगों के दिलों तक तो तुम्हारी आवाज ने रास्ता बना लिया, पर तुमने यह सुर और आवाज का रास्ता चुना कैसे था ?

एक समय था, जब मैं एक चौराहे पर खड़ी हुई थी—चौराहे से तो सिर्फ चार सड़कें निकलती हैं, पर मेरी जिन्दगी का चौराहा शायद अठराहा था—कांवेंट में पढ़ती थी कि नाचने का शौक हुआ। नाच मेरा पहला इश्क था। तीन बरस मैं भरतनाट्यम् सीखती रही। एक बार नाच के साथ कुछ श्लोक गाने थे जो कि मैं शौकिया गाती रही, और मेरी आवाज़ सुनकर किसीने कहा कि मुझे शास्त्रीय संगीत की शिक्षा लेनी चाहिए। वह भी सीखने लगी। वैसे पत्रकारिता भी करना चाहती थी, किताबों का भी इश्क है। और एक समय था जब लॉ करना चाहती थी।

फिर इस अठराहे से कदमों को सिर्फ संगीत के रास्ते ने खींच लिया ?

हां, संगीत के रास्ते ने जबर्दस्ती खींच लिया। गाने का इश्क मुझे उर्दू शायरी से हुआ था।

सरला ! तुमने कुछ फिल्मों में भी गाया था ?

सिर्फ दो फिल्मों में—एक थी, 'एक थी रीटा,' जिसके म्यूजिक डायरेक्टर जयदेव थे, दूसरी फिल्म थी 'शिमला रोड', जिसकी म्यूज़िक डायरेक्टर उषा खन्ना थीं। फिर मुझे बम्बई में रहने का मौका ही नहीं मिला।

मां की बीमारी एक ऐसी मजबूरी है कि मैं सिर्फ दिल्ली में ही रह सकती हूं।

पंजाबी गीत सबसे पहले रेडियो पर गाए थे ?

हां, रेडियो पर। गाने के लिए कहा गया तो मैंने मां से लोकगीत सीखे। गाए। पंजाबी के लोकगीत बहुत प्यारे हैं। मेरी मां पंजाबी के 'लम्बे गीत'[1] बड़े दिल से गाया करती थीं।

सरला ! सबसे पहला गीत कौन-सा था जिसने तुम्हारे मन को आकर्षित किया था ?

मुझे याद है, वह गीत था, "उड्डीं उड्डीं मेरे तित्तिर काले, लम्बी लाईं वे उडारी[2]..."

उसके बाद ?

मुझे बुल्ले शाह की काफिया बहुत अच्छी लगती हैं। [illegible] फरीद और बुल्ले शाह का काफियों में कोई जवाब नहीं। '[illegible] सुणावा दिल दा, कोई मेहरम राज न मिलदा...' [illegible] कर मैंने कापिया भर ली थी। अब तो वे [illegible] हुई [illegible] हैं, मेरी जिन्दगी की तरह...

हुस्न और जवानी के शिखर पर आकर, सरला ! [illegible] के पन्नों की क्या बात कह दी ?

यह अब मैं क्या बताऊं ! यह सब कुछ [illegible] पर नहीं आएगा। होठों के लिए [illegible] हैं [illegible] में ही खुलते हैं, वहीं समेटे जाते हैं।

अच्छा, संगीत की बातें करें। तुम्हारे पहले उस्ताद कौन थे ?

---

१. बारहमासा जैसे गीत, जो [illegible]।

२. उड़ो-उड़ो ऐ मेरे काले तित्तिर, ऊंची उड़ान भरना।

वह बहुत अच्छे थे, ग्वालियर घराने के थे, एन० जी० मोघे, भातखंडे स्टाइल के···। पर मन का एक दर्द बताऊं ? संगीत में मैं जहां पहुंचना चाहती थी, पहुंची नहीं। वह रास्ता अभी भी मुझे बुलाता है, पर कैसे चलूं उस रास्ते पर···अजीब दुर्घटना घट जाता है, जिस उस्ताद को भी उस्ताद धारना चाहा, वह संगीत की जगह इश्क की बातें करने लगा, और मैं हर बार इधर अपनी तरफ लौट आई।

हां, सरला ! कई बार जैसे बहुत पैसा राह में आड़े आ जाता है, हुस्न भी कम्बख्त रास्ते में खड़ा हो जाता है।

और, जानती हैं, अमृताजी। मैं फिर अपने-आपको किताबों में डुबा देती हूं। एक शे'र सुनाऊं, जिसने भी लिखा है मेरे मन का राज लिखा है, "हम हैं अपने वजूद का सहरा, कल भी तनहा थे आज भी तनहा···"

यह दुनिया भी शायद खुदा की तनहाई का सबूत है, सरला ! कलाकार की तनहाई लोगों के लिए करम बन जाती है। ये किताबें, यह बुतकारी और चित्रकारी के शाहकार, यह हवा में गूंजते सुर···यह शायद कहर (जुल्म) और करम (दया) का रिश्ता होता है।

हां, यह बात आपने ठीक कही। पर एक मुकद्दर भी होता है जो कला-कार के नजदीक ज़रा कम ही फटकता है। कलाकार का सपना उसके हाथों की पकड़ में नहीं आता। और दूसरे, अगर माहौल अलग तरह का हो। मुझे रेडियो पर गाने के लिए न जाने कितनी जद्दोजहद करनी पड़ी है।

सरला ! सोहनी और महिवाल सिर्फ दो व्यक्तियों का नाम नहीं था। कला सचमुच वह महिवाल होती है, जिसके लिए हर कला-कार को एक चिनाब तैरनी पड़ती है। अच्छा, यह बताओ, आज की पंजाबी शायरी में से कभी कुछ नज्में शौक से गाई हैं ?

एक तो अपनी नज्म, "अज्ज आक्खां वारिस शाह नूं···"[1] यह नज्म मैंने जब अपनी मां को सुनाई थी, वह भी रो पड़ी थीं। शिवकुमार की कोई नज्म मैंने कभी गाई नहीं, पर उन्हें अपनी नज्में गाते हुए कई बार सुना था। उनकी नज्में भी, और उनका तरन्नुम भी, भुलाने वाला नहीं है। और हां, सच,—एक नज्म अहमद राही की मैंने बड़े मन से गाई थी, "आईआं धीं तेरे तेरिआं जाइआ बाबला। सुण बाबला वे! तेरिआ लुट्टिया होइया कमाइयां बाबल! सुण बाबला वे।"[2] यह नज्म गाते-गाते मैं रो पड़ी थी। कई लफ्जों से और कई जगहों से न जाने कैसी-सी पहचान हो जाती है।···खंडहरों में जाकर मैं दीवानी हो जाती हूं। आपने मांडव के खंडहर देखे हैं, जहां रूपमती और बाजबहादुर हुए थे?

नहीं।

वहां जाकर मुझे लगा, जैसे मैं ही कभी रूपमती थी।

और बाजबहादुर?

वह न बस्तियों में मिला, न खंडहरों में।

> वह संगीत के रूप में जरूर है, सरला! पर कला का रूप खुदा का रूप होता है—जिसके लिए बुल्ले शाह तड़पकर कहता है, "रांझण नूं मैं ढूंढण चली, रांझण मिलिया नाहीं। रब्ब मिलिया, रांझण ना मिलिया, रब्ब रांझे वरगा नाहीं···"[3] अच्छा, सरला! दुआ करती हूं, तुम्हें रब्ब भी मिले, रांझा भी।

---

१ आज वारिस शाह से कहती हूं···।

२. तुम्हारी बेटियां तुम्हारे दरवाजे पर आई हैं, बाबुल! मैं तुम्हारी लुटी हुई कमाइयां···।

३. मैं रांझे को ढूंढने चली पर रांझा नहीं मिला। खुदा मिला, पर खुदा तो रांझे जैसा नहीं है।

ओरिआना फैलिसी की कलम से : उस बच्चे के नाम पत्र जो कभी जन्मा नहीं

कल रात मुझे पता लगा कि तुम हो : एक शून्य में से बन गया जिन्दगी का एक कतरा···मैं एक खौफ में सिमट गई। यह खौफ औरों का नहीं था, यह खौफ खुदा का भी नहीं था, यह खौफ पीड़ा का भी नहीं था, यह खौफ सिर्फ तुमसे आया—उन हालतों से, जिन्होंने तुम्हें शून्य में से लाकर मेरे बदन के साथ जोड़ दिया था।

तुम्हें स्वागतम् कहने की मुझे जल्दी नहीं थी, वैसे हमेशा जानती थी कि कभी-न-कभी तुम आओगे। कई बार अपने-आपसे यह भी पूछा था, "कौन जाने वह कभी इस दुनिया पर आना ही न चाहे ? और अगर कभी एक हिकारत से उसने मुझसे पूछा, "तुमसे किसने कहा था मुझे दुनिया पर लाने के लिए ? तुम मुझे इस दुनिया में क्यों ले आई ? क्यों ?"

बच्चे ! जीना एक लगातार जतन है। रोज नया जतन। खुशी के विरले पलों के लिए बड़ी जालिम कीमत चुकानी पड़ती है। तुम मुझसे बातें नहीं कर सकते। तुम जो जिन्दगी का एक कतरा हो, शायद जिन्दगी भी नहीं, सिर्फ उसकी संभावना।

पर क्या फर्क पड़ता है—अगर तुम्हारा अस्तित्व संयोगवश शुरू हुआ है, या वह एक गलती है। क्या दुनिया भी ऐसे ही संयोग से नहीं बनी ? शायद गलती से ? कई लोग कहते हैं कि आरंभ में कुछ नहीं था, सिर्फ एक महान् निश्चलता थी, एक महान् गतिहीन स्तब्धता—और

फिर एक चिनगारी उत्पन्न हुई। वह चिनगारी फट गई। बाद में क्या होगा क्या-क्या शक्लें बनेंगी, यह सब चिनगारी को पता नहीं था, न उसने इसके नतीजे के बारे मे सोचा था। सब कुछ संयोगवश हुआ था, या गलती में। पर वह लाखों में गुणा होती गई, करोड़ों में, अरबों-खरबों में···

हिम्मत करो, मेरे बच्चे! देखो—एक पेड़ के बीज को धरती फाड़कर उगने के लिए कितना साहस चाहिए! हवा का एक छोटा-सा झोंका भी उसे तोड़ सकता है, एक चूहे का पैर भी उसे कुचल सकता है, पर वह फिर भी उगता है, मजबूती से अपने पैरों पर खड़ा होता है, और उग-बढ़ कर अनेक बीज धरती पर बिखेर देता है, और एक बहुत बड़े, जंगल का हिस्सा बन जाता है।

अगर तुमने कभी मुझसे रोकर पूछा, "तुम मुझे दुनिया में क्यों लाई थी? क्यों? क्यों?" तो जवाब दूंगी, "मैंने वही किया है जो पेड़ करते हैं, जो वह अरबों-खरबों बरसों से करते रहे हैं। सो, मैंने सोचा, यही ठीक है।"

मैं यह सोचकर अपना विचार नहीं बदलूंगी कि इंसान पेड़ नहीं हैं। एक इंसान का दुख, उसकी चेतना के कारण, एक पेड़ से हजार गुना अधिक होता है। और एक जंगल बनने से हमारा कुछ नहीं सवरेगा। पर बच्चे! हर दलील का दूसरा पहलू भी होता है, उसे उलटी तरफ से भी देखा जा सकता है। सो कोई दलील नहीं, तुमसे बातें कर रही हूं—क्योंकि और किसीसे नहीं कर सकती।

मैं वह औरत हूं जिसने अकेले जीना स्वीकार किया है। तुम्हारा बाप मेरे पास नहीं है। इसका पछतावा नहीं है—चाहे मैं कई बार उस दरवाजे की ओर देखने लगती हू जिससे गुजरकर वह चला गया था, बड़े निश्चयात्मक कदमों से। मैंने उसे रोकने का जतन नहीं किया था। यह सब ऐसा था, जैसे हम दोनों के पास करने के लिए बातें खत्म हो गई हों।

कल मैं कुछ अपनी रौ में नहीं थी, मैंने तुम्हारे बाप को फोन किया, तुम्हारे बारे में बताया। उसकी जवाबी आवाज से लगा—यह कोई अच्छी खबर नहीं थी। सबसे पहले मैंने उसकी चुप को सुना,

फिर भर्राई हुई, तुतलाती हुई आवाज, "कितने ?" मैंने उसकी बात का अर्थ नहीं समझा, कहा, "नौ महीने, शायद आठ से भी कम"—फिर उसकी आवाज कांपी नहीं, सख्त हो गई, "मैं पैसों की बात कर रहा हूं ?" मैंने पूछा, "कैसे पैसे ?" उसने कहा, "इस चीज से छुटकारा पाने के"—यह ऐसे था, बच्चे ! जैसेकि तुम कोई गठरी-पोटली हो। जवाब में मैंने अपनी आवाज को, जितना भी मैं शान्त रख सकती थी, रखा। अपनी मर्जी बताई, तुम्हें जीवित रखने की। वह दलीलें देता रहा, सलाहें भी,—और फिर धमकियां भी। धमकियों में कुछ खुशामद भी शामिल थी। और अन्त में उसने बात को ऐसे खत्म किया, "हम खर्च को आधोआध कर लें, आखिर यह हम दोनों का गुनाह था।" मैंने फोन बन्द कर दिया। मैं पहली बार शर्मसार हुई कि मैंने इस मर्द को कभी प्यार किया था।

तुम और मैं कभी बैठकर 'प्यार के, बारे में बातें करेंगे। अभी यह लफ्ज मेरी समझ में नहीं आ रहा है। मेरा खयाल है लोगों को चुप रखने के लिए और उनका ध्यान किसी ओर लगाए रखने के लिए यह लफ्ज घड़ा गया है। हर कोई यह लफ्ज बरतता है—पादरी भी, इश्तहारों वाले भी, और सियासतदान भी। वह इसका जिक्र ऐसे करते हैं, जैसे इससे जिन्दगी के दुःखान्त टल जाते हों। पर इसीकी बातें करते हुए वह रूह और बदन दोनों जख्मी कर देते हैं।···बच्चे ! तुम्हें भी मैं प्यार के पहलू से नहीं सोचती, सिर्फ जिन्दगी के पहलू से सोचती हूं।

आज डाक्टर ने कागज का एक टुकड़ा मेरे सामने रखते हुए हुलसी हुई आवाज में कहा, "मुबारक ! मैडम !" और सहज स्वभाव मैंने उसके मैडम लफ्ज को दुरुस्त करके कहा, "मिस"। यह ऐसे था, जैसे मैंने उसके मुंह पर चपत मार दी हो। उसकी हुलसी हुई आवाज बुझ गई। और उसने मेरी ओर देखकर, और बे-वास्ता होकर, कागज पर लिखा हुआ लफ्ज काटकर 'मिस' लिख दिया। और इस तरह एक ठंडे सफेद कमरे में एक आदमी की ठंडी और सफेद कपड़ों में लिपटी हुई आवाज के जरिये साइंस ने बताया कि तुम हो।

कोई फर्क नहीं पड़ा। मैं खुद जानती थी कि तुम हो। पर डाक्टर

के कागज ने भविष्य की उलझनों की जैसे चेतावनी-सी लिख दी। तभी माइम की आवाज भी बदल गई--जब उसने मुझसे कपड़े उतारकर मेज पर लेट जाने के लिए कहा। आवाज से तपाक जाता रहा था। डाक्टर और नर्स ऐसे हो गए थे, जैसे मैं उन्हें मुआफिक नहीं आ रही थी। उन्होंने मेरी ओर देखने की बजाय कुछ अर्थ-भरी नजरों से एक-दूसरे की ओर देखा।

डाक्टर ने रबड़ के दस्ताने पहन कर—क्रोधी उंगलियों से मेरा मुआयना किया। उंगलियों का दबाव ऐसा था, मुझे डर लगा कि वह तुम्हें निचोड़कर खत्म कर देना चाहता है। आखिर उसने कहा, "सब ठीक है। बिलकुल नार्मल।" और कई सलाहें दीं, "मुझे बहुत परिश्रम नहीं करना चाहिए, बहुत गर्म पानी में नहीं नहाना चाहिए—और कोई जुर्म नहीं करना चाहिए।"

"जुर्म ?" मैंने हैरान होकर पूछा। उसने कहा, "क्योंकि कानून की ओर से मनाही है"—और यह सब कुछ उसने बहुत ठंडी आवाज में कहा। नर्स ने मुझसे 'गुड बाई' भी नहीं कहा।

बच्चे! हमें इन सब बातों की आदत डालनी है। जिस दुनिया में तुम्हारी आमद हो रही है, वहां बदले हुए वक्तों की सिर्फ बात होती है। वहां औरत को गैर-जिम्मेदार कहकर आज भी हिकारत की नजरों से देखा जाता है। बिन-ब्याही मां और मांओं जैसी नहीं होती। वह खब्ती और बखेड़े की जड़ समझी जाती है।

जिस दुकान से डाक्टर की बताई हुई दवा खरीदी, वह मुझे जानता था, नुस्खे की ओर देखकर, उसने, भौंहे चढ़ाकर, मेरी ओर देखा। दवा लेकर मैं दर्जी की तरफ गई, क्योंकि आगे जाड़ा आने वाला था और मुझे एक कोट सिलाना था। पर दर्जी जब नाप लेने लगा तो मैंने उसे बताया कि मुझे खुला-सा कोट चाहिए, क्योंकि जाड़ों तक मेरा बदन ऐसे नहीं रहेगा जैसा आज है। नापने का फीता हाथ में लेते हुए उसने अपने हाथ की सूइयां दांतों में दबा ली थीं। पर जब उसने मेरी बात सुनी तो उसका मुंह खुला रह गया। मुझे लगा, सारी सूइयां अन्दर उसके गले में उतर गई हैं। पर देखा—सूइयां नीचे फर्श पर गिरी पड़ी थीं ···।

मुहब्बत : एक स्वीकार
(एक आध्यात्मिक व्यक्तित्व, स्वामी चिन्मय से बातचीत)

आपका एक नाम आपके पहरावे ने आपको दिया है—पहरावा चिन्तन के एक अलग क्षेत्र ने दिया है, साधना के क्षेत्र ने, वह नाम स्वामी चिन्मय है। पर जो नाम जननी ने दिया था, जो आपके अन्दर के शायर ने अभी भी स्वीकार किया हुआ है, आपका वह नाम सुनील कश्यप है। ये दो नाम आपके लिए अपनी हस्ती का कोई विभाजन करते हैं, या किसी जगह एकरूप हो गए हैं ?

बहुत अच्छा सवाल है। कभी-कभी ऐसा होता है कि व्यक्ति को जीने के लिए कुछ पहचान की जरूरत होती है। पर जिस क्षेत्र में भी आदमी जीता है, इंसानी तौर पर उस आदमी को पहचानने के लिए एक नाम की भी जरूरत है—जिससे वह पुकारा जा सके। पर ऐसे भी होता है कि जब भी आदमी अपने क्षेत्र के अपने कर्म में लीन हो जाता है, तब उसकी पहचान, उसका नाम नहीं होती, उसका कर्म होता है। जिसने जन्म दिया, उसने नाम भी दिया,—जिसने ज्ञान दिया, उसने भी नाम दिया। पर उन नामों से हटकर मेरा होना मेरे अस्तित्व का बोध है। इससे इनकार करने से भी मेरा होना नहीं मिटता, इसलिए मैं जिन्दगी को स्वीकार करके जीता हूं। नाम एक काम चलाऊ भाषा है, जिसके द्वारा आदान-प्रदान बना रह सकता है। नाम के पीछे जिन्दगी नहीं होती। यह ऐसे है—कि सागर की लहरों को देखने से सागर दिखाई नहीं देता, लहर दिखाई देती है। सागर तो लहरों के नीचे है। नाम, सिर्फ लहर है,

जिन्दगी सागर है, अनत है। उस अनंत का कोई नाम नहीं है, और सारे नाम उस अनंत के हैं। इन नामों मे मेरी जिन्दगी मे कोई परेशानी नहीं। दो नाम होने से भी जिन्दगी एक ही आदमी जीता है। इसलिए मेरी पहचान मेरा नाम नहीं, मेरा कर्म है।

आपकी एक नज्म की दो पंक्तियां हैं, "तुम मुझे आवाज दो, मैं तुम्हें आवाज दूंगा, चुप होंगे ये क्षण जब, तब तुम्हें आभास होगा···" इन पंक्तियों का 'मैं' मेरे सामने है, पर इन पंक्तियो का 'तू' कौन है ?

मैंने जैसा आपको सोचा था, वैसा ही पाया। बहुत गहरा सवाल है, पर जवाब दूंगा। मंदिर में लोग परिक्रमा करते है। परिक्रमा इसलिए की जाती है कि बीच मे कोई केन्द्र होता है···।

केन्द्र से भाव अदृश्य चीज—परम आत्मा है ? या कोई दृश्य वस्तु —कोई काया ?

केन्द्र से मेरा भाव परम आत्मा की मूर्ति से है।

क्या ऐसे केन्द्र में परम आत्मा का कण मात्र कोई लहू-मांस की मूर्ति नहीं हो सकती ?

यहा जिस मूर्ति की बात कर रहा हूं, वहा व्यक्तियों की आस्था से बने मंदिर की बात है—और जहां लहू-मास के रूप मे परम आत्मा की बात है, ऐसे विचार को आदमी समझ सके—तो दुनिया मंदिर हो जाती है। फिर मंदिर के निर्माण की जरूरत नहीं रहती। तब चारो ओर परमात्मा ही परमात्मा होता है। पर यह हमारे विश्वासो का सकट है कि हम परम आत्मा (प्रेम) मे रहते हुए भी उसे अस्वीकार कर देते है, यह हमारे अचेत मन की दशा है।

अस्वीकार अचेत मन की दशा नहीं हो सकती, चेतन मन की हो सकती है।

हां, चेतन मन की।

फिर अचेत मन जो स्वीकारता है, उसका कुछ जिक्र करेंगे ?

जिन्दगी में जिसे हम जड़ कह सकते हैं, वह भी सोया हुआ चेतन है। कभी-कभी ऐसा होता है कि जिसे हम जान नहीं सकते, उसे मान लेते हैं। वह मान लेना ही बहुत गहराई में स्वीकार बन जाता है—वही स्वीकार अचेत मन की दशा है।

आपका दुनियावी इल्म भी एम०ए० तक है। उस साधारण जिन्दगी की ओर से कौन-सी चीज, कौन-सी कशिश, आपको साधना की इस असाधारण राह की ओर ले आई थी ?

साधना की दृष्टि से जब कभी भी और जितना भी, मैं कुछ जानने की कोशिश करता था उतना ही मैं साधना के तीन अक्षरों में उलझता जाता था कि यह क्या है ? जहां तक हमारी नजर जाती है वहां तक तो कुछ समझ में आता है, पर जो नजर से परे है, दिखाई नहीं देता, उसे देखने के जतन में, जानने के जतन में, मुझे खुद-ब-खुद ही इस क्षेत्र ने अपनी तरफ खींच लिया।

क्या यह अवस्था सही अर्थों वाली इंसानी मुहब्बत में से नहीं पाई जा सकती ?

यह अवस्था सही अर्थों में, सही अर्थों वाली इंसानी मुहब्बत में से ही पाई जा सकती है। यहां मैं दो तरह का उदाहरण दूंगा। सामाजिक प्राणी वह है जो बाहर से एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है। और दूसरा आध्यात्मिक प्राणी वह है जो 'स्वयं' से जुड़ा हुआ है। इंसान का 'स्वयं' जब इंसानों के 'स्वयं' से जुड़ता है, तो वह 'स्वयं' सही अर्थों में, सही इंसानी मुहब्बत के माध्यम से ही जुड़ सकता है। जहां उसके 'स्वयं' में 'स्वयं' नहीं, समाज होता है, उसकी अपनी आंख समाज की आंख हो जाती है।

समाज की आंख से स्वतन्त्र किसी 'मैं' की आंख, किसी 'तू' की आंख से मिलकर, अपार दृष्टि नहीं हो सकती ?

जब भी दो दृष्टियां मिलती हैं वे दो दृष्टियों से चार दृष्टियां नहीं

होती।

मेरा गुणा करने से भाव नहीं था, मेरा सवाल एक ही दृष्टि की शक्ति के बढ़ जाने से था।

मैं यही कह रहा था कि एक दृष्टि से दो या चार दृष्टियां नही होती— एक ही दृष्टि महादृष्टि हो जाती है। ऐसी दृष्टि से हमेशा शक्ति मिलती है।

आपकी और मुझ जैसे लोगों की जिन्दगी का ऐसा निजी कुछ भी नहीं होता जो पूछा या बताया न जा सके। सीधे लफ्जों मे पूछती हूं कि आपने एक मर्द होकर एक औरत की मुहब्बत की महानता देखी है या नहीं?

इसका जवाब कुछ लंबा दूंगा। संतुलन से सारी दुनिया चलती है। यहां जितने त्यागी है, उतने ही भोगी है। जितने संकल्प वाले है, उतने ही समर्पण वाले है। दिन है, तो रात है। हमारे दो पैर है, तो दो पंख भी हैं। इस दुनिया में प्रेम है, तो घृणा भी है। मर्द है, तो औरत भी है। जिन्दगी को जीने के ढंग के अलावा, इंसानी मुहब्बत मे से भी गुजरना होता है। मुहब्बत मेरी नजर में वह सच है, वह चादना है, वह एहसास है, जो अपने 'स्वयं' को, एक छोटी लकीर को, स्त्री-प्रेम मे देख सकता है, जान सकता है। मुहब्बत मे हम उस सच को जान सकते हैं, जिसे हम पुरुषों मे कभी नही देख सकते।

साधना में प्रज्ञा और उपाय दो मूल शक्तियां मानी गई हैं। एक पुरुष शक्ति, एक नारी शक्ति। यही शिव-शक्ति के रूप हैं, जिसमें शिव प्रज्ञा है, पूर्ण ज्ञान का पैसिव रूप, और उसका उपाय से मिलना जरूरी है, यही शक्ति का सक्रिय रूप है। इनके मिलन को आदर्श-विवाह कहा जाता है। इन्हें 'स्वयं' की सामर्थ्य के प्रतीकात्मक रूप भी मान लें, तब भी इन्हें पुरुष और नारी की तुलना देने का अर्थ है—मूल चिन्तन में नारी को समानता देना, और उसके मिलन को 'स्वयं' की पूर्णता के लिए जरूरी समझना। फिर

तपस्वियों की साधना में नारी के त्याग की धारणा क्यों है ?

वह गलत है। जिन्होंने नारी का त्याग किया, उन्होंने अपने अन्तस की गहराई में नारी को कहीं बहुत अधिक स्वीकार कर लिया। उनके अस्वीकार में ही नारी का स्वीकार, साधना बन जाता है। नारी को त्यागकर हम साधना के किसी अंश को देखने से वंचित रह जाते हैं। फिर वही नारी साधक के अन्दर उसकी अपनी विकृति का कारण बन जाती है। नारी के त्याग का अर्थ होता है—अपने अन्दर के प्यार को त्याग देना, सुकड़-सिमट जाना। नारी स्रोत है जिन्दगी का, जिससे अपने जाने का इंसानी सिलसिला चलता है। साधक कितना ही इनकार करे, उस नारी में से गुजरना ही होता है। जिसे हम परमात्मा कहते हैं, उसके पहलू से लगी सीता खड़ी हुई है पार्वती खड़ी हुई है, रुक्मिणी खड़ी हुई है। इसलिए साधक सामाजिक दृष्टि से कितना ही इनकार करे, पर साधना की दृष्टि से स्वीकार करता चला जाता है। अगर वह इनकारी हुआ था, तो नारी के संबंध में वह इतने फैसले कैसे दे सका ? जो स्वीकार करता है, वही तो निर्णय दे सकता है। इसलिए हम देखें कि जिन तीन शक्तियों की हम चर्चा करते हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश की—उसमें ब्रह्मा इस जगत् की रचनात्मक शक्ति है, विष्णु सुरक्षा-शक्ति है, और महेश संहार-शक्ति है। उन्हें हम नाम बदलकर स्वीकार करते हैं, पर स्वीकार करते हैं। इन तीन शक्तियों का सिलसिला ही दुनिया है। इन्हें ही अध्यात्म कहता है—सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्। योग की भाषा में योगी कहते हैं—सत, चित, आनन्द। पर इन सबका संचालन—नारी-शक्ति से ही शुरू होता है। विज्ञान की भाषा में इसे न्यूट्रोन, प्रोटोन, इलैक्ट्रोन कहा जाता है। बात वही है—ब्रह्मा, विष्णु, महेश वाली।

प्रागैतिहासिक काल में क्या लिंग और योनि का पूजन प्रतीकात्मक था ? रचना-शक्ति के अर्थों में ? या और किन्हीं अर्थों में ?

योग की भाषा में मानव-शक्ति को सात हिस्सों में बांटा गया है। इन

सात हिस्सों को योगी सात चक्र कहते हैं। इंसान के पहले चक्र को मूलाधार चक्र कहा गया है। विज्ञान इसे सेक्स-सेंटर कहता है। जब भी संभोग करता है, उसकी सांसें तेज और गहरी हो जाती है। उस गहरी और तेज सास की चोट मे जो संभोग का आनंद हमें क्षण भर के लिए मिलता है, ठीक उसी आनंद को शाश्वत रखने के लिए साधना की जरूरत होती है। इसलिए संभोग को भी साधना का एक रूप दे दिया गया है। साधना मे सभोग भी अगर होशमदी से किया जाए तो मूलाधार चक्र (कुंडलिनी शक्ति) का जागरण होता है···।

आपने हर सिद्धान्त को सहजता दी है, स्पष्टता दी है; इसलिए पूछना चाहूंगी कि आपके अपने सिद्धान्त के अनुसार आपकी जिन्दगी मे अभी औरत की मुहब्बत क्यों शामिल नहीं हुई ?

मेरी जिन्दगी मे औरत की मुहब्बत शामिल है, और इतना करीब है, मेरे अन्तर मे कि वही मेरे अन्दर है। मैं भी उसके अन्दर हूं। इसलिए इसे कोई अलग, औरत का नाम देकर, मैं उसे बयान नही कर सकता। मुहब्बत ऐसा स्वीकार है—जिसे मैं जिन्दगी मे अस्वीकार कर ही नही सकता। मैं उसके साथ इतना जुड़ा हुआ हूं कि अलग कोई नाम देना, उसे अलग करने के बराबर है। जो अलग ही नही, उसका जिक्र अलग कैसे ?

यह बुद्ध के परम आनन्द की अवस्था है। जो 'स्वयं' में 'स्वयं' की पूर्णता है। फिर जिसका एक अलग वजूद है—शरीर है, नाम है, रूह के संगम में भी उसके अस्तित्व के नाम से इनकार क्यों ?

किसी भी श्रेष्ठ पुरुष की श्रेष्ठता पुरुष होकर ही पूर्ण नहीं होती। अगर पुरुष के जीवन में से नारी को अलग कर दिया जाए तो पुरुष की पहचान कैसी ? जिस तरह रावण के बिना रामलीला नही हो सकती, ठीक उसी तरह बिना नारी के पुरुष की पहचान नही हो सकती···जो इनकार कर रहे है, वह उसमें गुजरकर इनकार कर रहे हैं। मानव-जीवन का एक बहुत ही सुन्दर सूत्र है कि जिसे भी हम जान लेते हैं, उससे मुक्त हो जाते

हैं—जिसे हम मान लेते हैं, उससे बंध जाते हैं। जिन्होंने जाना, उनका इनकार भी पहले उसे स्वीकार कर चुका है।

रामलीला का रावण सामाजिक उलझनों का प्रतीक है, यानी समाज का। पर मैंने रावण-मुक्त लीला की बात पूछी है।

इस बारे में कृष्ण की एक घटना याद आती है—सत सनातन है। जिसे हम हिन्दू धर्म कहते हैं, उसे हम अद्वैतवाद कहते हैं। पर उसीकी सारी लीला, कृष्ण की सारी लीला, द्वैतवादी है। लीला में रस 'द्वय' में बंट जाता है। अद्वैत में सत—सर्व-सत्ता का मालिक होता है, जिसे हम परमानन्द कहते हैं। वहां द्वय नहीं, अद्वैत घटित होता है। अद्वैत ही मुक्ति है।

पर मेरा प्रश्न द्वय के बारे में नहीं, अद्वैत के बारे में ही है। सिर्फ इतना कि औरत की मुहब्बत मर्द के अद्वैत में शामिल है या नहीं?

औरत की मुहब्बत ही अद्वैत की मंजिल की राह बनती है।

इस राह पर आपने कदम रखकर देखे हैं या नहीं?

मैंने सिर्फ कदम रखकर नहीं देखे, जानता भी हूं कि मुझे कहीं जाने के लिए जिन्दगी के अंगों को स्वीकार करना ही होगा। इसलिए मैं यह जानकर, और समझकर, गुजरता हूं। यह गुजरना जिन्दगी को खुशकिस्मती से स्वीकार करना है।

जिन्दगी के स्वीकार में शरीर पर पहनने के लिए एक अलग रंग के भेस का क्या कारण है? जिन्दगी को हर रंग क्यों स्वीकार नहीं है?

संन्यासी होना एक संकल्प है, सिद्धि उसकी यात्रा है। संन्यासी का अर्थ होता है—सत्य को स्वीकार करने वाला। संन्यासी की वेशभूषा का एक ही रंग चुनना उसकी यात्रा में सहयोग का प्रतीक है। उसका हजार लोगों की भीड़ में से गुजर जाना—एक प्रश्न की प्यास बन जाता है।

यह रंग हमेशा उसे उसके कर्म की याद दिलाता रहता है।

पर कर्म की याद मन की सहज अवस्था नहीं होती ?

हां, कर्म पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता। कर्म मन की अवस्था है। इस वेशभूषा में भी लोग जाने क्या-क्या कर जाते हैं। पर यह सिर्फ एक प्रतीक है, और कुछ नहीं।

साधना का कर्म क्या है ?

एक फूल के विकसित होने का कर्म—जिसके लिए उसकी महक उसकी सहज अवस्था है।

जाति, कौम, मजहब और मुक्त विवाह

मदनजीतजी ! यह तीन आतशा शराव आप कैसे पीते हैं ? एक तो आप हैं चित्रकार, दूसरे साहित्यकार और तीसरे डिप्लोमेट।

बुनियादी तौर पर मैं साइंस का स्टूडेंट था, लाहौर के गवर्नमेंट कालेज में। पेंटिंग और फोटोग्राफी से मुझे जन्मजात इश्क था। लाहौर में तीन वार इनकी नुमाइश की थी—१६४५-४६ और ४७ में। ४७ की नुमाइश के समय फिसाद हो रहे थे। वह नुमाइश फिसाद-पीड़ितों-की मदद के लिए की थी। १६५० में इटली भारत की एक्स्चेंज स्कीम के समय हिन्दुस्तान में हम तीन व्यक्तियों को स्कालरशिप मिला था—केशव मलिक को, जमीला वर्गीज को, और मुझे ··· । वहां रोम में वी० आर० सेन अम्वेसेडर थे, वह मेरे काम से वहुत प्रभावित हुए थे। 'जर्नल आफ इटैलियन इन्स्टीट्यूट आफ मिडल एण्ड फारईस्ट' के लिए मैं अक्सर लिखता था। मिस्टर सेन ने मेरे कई लेख पढ़े और उन्होंने कल्चरल अटैचे के तौर पर मुझे अम्वैसी में शामिल होने का वुलावा दे दिया। यह डिप्लोमैटिक नौकरी संयोगवश मिल गई, मैंने इसके लिए कभी सोचा भी नहीं था। पर मुझे एक वात की तसल्ली है कि यह नौकरी मुझे मेरी कला के आधार पर मिली। मददगार भी हुई, क्योंकि मेरे कामों की कितावें इटली में छप सकीं। पहली किताव छपी थी 'इंडियन स्कलपचर इन ब्रौंज एण्ड स्टोंज'। इसकी प्रस्तावना प्रोफेसर तूची ने लिखी थी।

यह प्रोफेसर तुची वही हैं न, जिन्हें पिछले बरस नेहरू अवार्ड मिला था ?

हां, वही। मेरी दूसरी किताब छपी थी "इंडियन पेंटिंग्ज फ्राम अजन्ता केव्ज'। यह यूनेस्को का प्रकाशन थी। यूनेस्को वर्ल्ड आर्ट सीरीज की यह पहली किताब थी। इसकी प्रस्तावना पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखी थी।

यह अंग्रेजी में छपी या इतालवी जबान में ?

यह यूनेस्को वाली किताब छह जबानों में छपी थी—अंग्रेजी, इतालवी, फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश और रूसी में।

किसी भारतीय जबान में छपी ?

यूनेस्को ने हिन्दी में छापने के लिए सोचा था, फिर सोचा कि अंग्रेजी वाली हिन्दुस्तान में काम दे जाएगी।...मेरी तीसरी किताब थी टस्किन सभ्यता की चित्रकारी के बारे में। यह इटली की प्राचीन सभ्यता थी। गुफाओं की चित्रकारी के बारे में यह किताब इतालवी जबान में छपी थी।

आपने मूल अंग्रेजी में लिखी होगी ?

मैं इतालवी जबान बहुत अच्छी जानता हूं। रोम में ब्राडकास्टर भी रहा था पर किताब अंग्रेजी में लिखी थी। इतालवी में तर्जुमा हुआ।...उसके बाद मेरी चौथी किताब फिर अजन्ता केव्ज के बारे में थी और विस्तार के साथ। यह लिखी इटली में थी पर छपी लन्दन में। इसके बाद 'इंडियन मिनिएचर्ज' के बारे में किताब छपी थी—जो मिनिएचर्ज हिन्दुस्तान से बाहर दूसरे मुल्कों में हैं। यह छपी मिलान में थी पर अमरीकन प्रकाशक की ओर से। आर्ट के बारे में सबसे नयी किताब यूनेस्को की ओर से छपी है हिमालय आर्ट के बारे में। यह पांच जबानों में छपी है।

मैंने आपकी सिर्फ एक किताब पढ़ी है 'दि ह्वाइट हार्स आफ विष्णूज ड्रीम'—जिसमें आपके सपनों में बार-बार आने वाले एक

सफेद घोड़े का जिक्र है—साथ ही सपनों से आने वाले तूफान का और किसी मेले या जश्न का। इन सपनों को आपने पंडित जवाहरलाल नेहरू से जोड़ा है। जरा तफसील में बताएंगे कि कैसे ?

मुझे अपने सब सपने याद रहते हैं, और अजीब इत्तफाक होता है कि कई सपने आने वाली घटनाओं से संबंधित होते हैं। मैं छह साल का था जब पंडितजी को एक सफेद घोड़े पर चढ़े हुए देखा था। यह सफेद घोड़ा मेरे लिए ताकत और शख्सियत से जुड़ गया। पानी का सैलाब, या किसी मेले का जश्न हमेशा मौत से जुड़कर आया। मेरे पास इसका कोई उत्तर नहीं है कि ऐसा क्यों होता है। कुछ है, जो दलील के परे है, जो पकड़ में नहीं आता।

मदनजीतजी ! कोई चार महीने हुए, आपकी बहन रंजीता का दिल्ली में कत्ल हुआ था, आप उस समय यूगांडा में थे, हिन्दुस्तान के अम्बेसेडर—इस दर्दनाक मौत की होनी का कोई संकेत आपने सपने में देखा था ?

उस घटना से कोई छह महीने पहले मुझे लगातार बाढ़ के सपने आते रहे थे। एक अजीब सपने में रंजीता को एक पहाड़ी के पास खड़े हुए देखा, जिसके चारों ओर पानी ही पानी था, वह एक टापू-सा था, और उसकी लहरें उस जगह पर पहुंच रही थीं, जहां वह खड़ी थी। मैं उसका हाथ पकड़कर उसे और ऊपर पहाड़ी के शिखर पर ले जाने की कोशिश करता रहा—पानी से बचाने के लिए। उन दिनों यूगांडा से बाहर के लोग निकाले जा रहे थे, मैंने सपने को ज्यादा उस बात से जोड़ा और रंजीता को हिन्दुस्तान में फोन करता रहा कि मैं ठीक हूं। मैंने इस बात को रंजीता के कत्ल से नहीं जोड़ा था। पर बाढ़ का सपना जैसे हमेशा मौत से जुड़ता आया था, इस बार भी मौत से जुड़ गया···रंजीता का कत्ल दिल्ली में १५ अक्तूबर को हुआ था। उस से पहली रात मुझे यूगांडा में सपना आया कि मेरा बेटा मिकी किसी पहाड़ की गहरी दरार में गिर

गया है। मैं बहुत घबराकर जागा। अगले दिन रंजीता की मौत की खबर सुनी···। यह इलहाम जैसे सपने क्यों, कैसे आते है, मेरे पास कोई जवाब नहीं है, लेकिन आते हैं।

आपने एक इन्दोनीशियन लड़की से शादी की है, क्या वह भी कोई अचेतन मन में पड़ी हुई शाश्वत महबूबा का कोई तसव्वुर था—जो इस लड़की के नैन-नक्श में देखा।

नहीं, मेरा खयाल है, यह सिर्फ एक इत्तिफाक है। इस लडकी ध्यानावती के बाप से मैं स्वीडन मे मिला था, वहा वह इन्दोनीशियन अम्बेसेडर था।

ध्यानावती हिन्दू नाम है, पर इन्दोनीशियन लोग ज्यादातर मुस्लिम हैं···।

ध्याना भी मुस्लिम है, पर इन्दोनीशिया मे मुसलमानों के नाम हिन्दू नाम हैं।

ध्याना की बहन का नाम सीता है, मा का रत्नावली।

किसी मुस्लिम लड़की का नाम सीता भी होता है—मैंने कभी नहीं सुना। आपने अपने पुत्र का क्या नाम रखा है ?

महेन्द्रजीत। उसका स्वीडन मे जन्म हुआ था, इसलिए उसकी कौमियत स्वीडिश है।

बेटा सोलह बरस का हो गया है, विवाह भी सही अर्थों में सुख कहा जा सकता है, पर मै ध्याना से पूछना चाहूंगी कि मजहब जबान और सभ्यता के इतने बड़े फर्क ने उसे कभी मुश्किल में नहीं डाला ?

मैं भी पश्चिमी दुनिया मे पली थी, मदनजीत भी, इसलिए ज्यादा मुश्किल नहीं आई। रात को हम यूरोपियन ढंग का खाना खाते है। दिन को फर्क होता है। मुझे चावल चाहिए, मदनजीत को गेहूं की रोटी। सो दोनों चीजें पका लेते हैं···। इन्दोनीशियन सभ्यता बहुत हद तक भारतीय

सभ्यता है। इसलिए वह फर्क नहीं पड़ा।

ध्याना! मदनजीत की पंजावी भी सीख ली है या नहीं?

सास साहिवा से पंजावी बोलती हूं। वोलने में मेरी जवान वहुत अच्छी नहीं है, पर समझने में यह जवान पूरी समझ में आ जाती है। मुझे दुनिया की आठ जवानें आती हैं। इन्दोनीशियन, अंग्रेजी, डच, स्वीडिश, पोर्तगीज, फ्रेंच, और आठवीं जवान हिन्दी-पंजावी। पर यह जवान में पढ़ या लिख नहीं सकती।

मजहव का फर्क कभी सामने आता है या नहीं?

विल्कुल नहीं। मेरे मां-वाप मुस्लिम हैं, पर न कभी उन्होंने नमाज पढ़ी थी न मुझे पढ़ना सिखाया। मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, गिरजा मुझे एक-से पूजा के स्थान लगते हैं, मन में कोई फर्क नहीं महसूस होता।

जावा में मुसलमान अभी तक रामायण पढ़ते हैं, महाभारत पढ़ते हैं। मजहवी रस्म की वजह से नहीं, यह उनकी सभ्यता का हिस्सा है। इन्दोनीशिया के 'पपेट शो' मशहूर हैं—वह सव महाभारत की कहानियों पर खेले जाते हैं।

ध्याना, आप दोनों जिन्दगी भर पश्चिम में रहे हैं अकेले, पर जव हिन्दुस्तान आकर मदनजीत के रिश्तेदारों से मिलती हैं, तो कोई फ़र्क महसूस होता है?

नहीं। मुझे सवने कवूल कर लिया है, और मैंने सवको। मेरा खयाल है, मैं मदनजीत के रिश्तेदारों को मदनजीत से भी ज्यादा जानती हूं और उन्हें मदनजीत से भी ज्यादा प्यार देती हूं।...सास वीजी जव पाठ करती हैं, गुरु ग्रन्थ साहव का पाठ करवाती हैं, मुझे खासतौर से अपने पास विठाती हैं।

मदनजीत, आपने व्याह किस रस्म से किया था?

रस्म से पहले एक अजीव मुश्किल थी कि फारेन सर्विस में अगर किसी

दूसरे देश की लड़की से विवाह करना हो तो रूल के मुताबिक पहले नौकरी से इस्तीफा देना होता है। यह एक टेम्प्ट भी था। मैं ध्याना को सचमुच इतना प्यार करता था कि नौकरी से इस्तीफा भेज दिया। इन्तजार में पूरा डेढ़ बरस लग गया कि विवाह की इजाजत मिलती है या नहीं। तब पंडित जवाहरलाल नेहरू ने खुद यह इजाजत दिलवाई। इसलिए नौकरी भी बनी रही और विवाह भी हो सका। विवाह की हमने तीन रस्में की थीं।

तीन क्यों?

पहले गुरुग्रन्थ साहब के गिर्द फेरे लेकर। जब मेरी मां मेरे पास स्वीडन आई हुई थी। हमारे अम्बैसेडर केवलसिंह थे, उनके पास गुरुग्रन्थ साहब की बीड़ थी। मेरी मां ने विवाह करवाने वाले पुरोहित का काम किया, गुरुग्रन्थ में से फेरे पढ़े, और हमने फेरे लिए। दूसरी रस्म ध्यान के घर हुई, इन्डोनीशियन रीति के अनुसार। यह बड़ी हसीन रस्म होती है—दोनों के सिर पर छतरी तानकर कोई खड़ा हो जाता है और सारे रिश्तेदार, कुटुम्बी विवाह के जोड़े पर चावल फेंकते हैं।

सामने किसी देवी-देवता की मूर्ति भी होती है?

नहीं। रस्म के मुताबिक मुल्ला आकर शादी करवाता है, लेकिन स्वीडन में कोई मुल्ला नहीं था इसलिए कुरान की कुछ आयतें पढ़ ली। हमने विवाह कर लिया।

सो, एक रस्म में मां पुरोहित बनी, दूसरी रस्म में बाप मुल्ला। तीसरी रस्म कौन-सी की ध्याना?

वह दिल्ली में आकर की थी—सिविल मैरिज। वह कागज-पूर्ति के लिए जरूरी थी—हिन्दुस्तान की कौमियत लेने के लिए। मुझे एक बरस हिन्दुस्तान में आकर रहना जरूरी था, सो रही थी, और उसके बाद मुझे हिन्दुस्तान की कौमियत मिली।

रमेश वक्षी की तीसरी कसम

रमेश ! आपके कमरे में रखे हुए कैक्टस की एक वांह में हमेशा कांच की चूड़ियां पड़ी रहती हैं। यह कैक्टस की कांटों वाली वांह, कौन-कौन-सी गोल, गोरी और कोमल वांह का प्रतीक है ?

मैं झूठ बोलता हूं। मेरा घर थियेटर है, इसलिए इस घर में चुनरियां, चूड़ियां, चोलियां—सब चीजें हैं।

फिर थियेटर झूठ है या खोई हुई वांहें ?

थियेटर तीन वार झूठ होता है, यह वर्नार्ड शा ने कहा था—पहला झूठ, जिन्दगी जीने के समय; दूसरा झूठ, उसे नाटक की शक्ल में लिखने के समय; और तीसरा झूठ, उस नाटक को पेश करने के समय।

और चौथा झूठ, चूड़ियों वाले राज को थियेटर के पर्दे में छिपाने के समय ?

हां, वह भी। इसीलिए कहता हूं कि मैं झूठ बोलता हूं।

पर जब झूठ को झूठ का नाम दे दिया जाए, उसके नाम का सच, उसकी खसलत वदल देता है।

पर गुनाह का एहसास है। शायद गुनाह का यह एहसास मेरा नहीं, समाज का दिया हुआ है।

फिर दिए हुए को, रमेश ! स्वीकार क्यों करते हो ?

बहुत इनकार किया था, बहुत बार···दस-बारह तस्वीरें दिखा सकता हूं।

दस-बारह या बीस हादसे कोई मायने नहीं रखते। जो जबर्दस्ती दिया जाता है, जितनी बार भी, चाहे हजार बार, उतनी ही बार नकारा जा सकता है।

अमृता ! हजार बार नकारकर भी, दो बार नही नकार सका। यह दो हादसे मेरे दो बच्चे हैं—एक सीमांत, और एक इति। सीमांत के जन्म के समय, राममनोहर लोहिया ने पूर्वांचल को सीमांत नाम दिया था, हमारे देश का वह इलाका, जिसमें अरुणाचल, आसाम, गौहाटी, सब जगहें आ जाती हैं···और इति के जन्म के समय, उसकी मां से सारा रिश्ता खत्म हो गया था, इसलिए मैंने बच्ची को इति नाम दिया था।

बच्चे का नाम सीमांत रखने पर भी सीमा का अंत नहीं हो सकता, और बच्ची से रिश्ता खतम करते हुए भी, रिश्ते की इति नहीं हो सकती।···यह बच्चे कहां हैं ?

अपनी-अपनी जगह।

पर कोई बच्चा जिसे 'अपनी जगह' कह सके, वह सिर्फ मां नहीं होती, बाप भी होता है।

मैं नही मानता।

अगर सचमुच नहीं मानते, तो फिर चेहरे पर दो गहरी लकीरें क्यों हैं ?

दो नहीं, बहुत सारी लकीरें हैं।

वे लकीरें बच्चों की मांओं का जिक्र है, पर ये दो लकीरें ?

नहीं, मैं बच्चो की मांओं की बात नही कर रहा हूं, वे लकीरें मेरे चेहरे पर नहीं हैं, वे मेरे अंतर मे खिची हुई हैं। पर चेहरे की लकीरो में

वे बच्चे भी शामिल हैं, जो नहीं हैं, जो सिर्फ लहू की धारा थे—हाथों की उंगलियों में से बह गए…।

हाथों पर शायद उनके दाग पड़ जाते, अगर आपके हाथों में कलम न होती। कलम ने शायद गंगा का पानी बनकर वह दाग धो दिए। आजकल क्या लिख रहे हैं ?

एक नाविल लिख रहा हूं—'चल वैजयंती'।

यह आटोबायोग्राफिकल होगा ?

मेरे सारे नाविल आटोबायोग्राफिकल हैं। मेरे पास मेरे सिवा कुछ भी नहीं है।

जो सही मायनों में अपना होता है, वह आपके पास है, अपना स्वयं।…फिर रमेश ! इतना दर्द क्यों ?

मुहब्बत एक कर्ज था, वह कर्ज मैंने हर बार ब्याजसहित चुका दिया। दर्द ब्याज का नहीं, पर…।

दर्द शायद ब्याज का ही है जिसे देते समय कुछ टुकड़ा स्वयं का भी देना होता है। इस स्वयं के छोटे-छोटे जर्रे आज कहां-कहां पड़े हुए हैं ?

शायद कहीं भी नहीं, सिर्फ एक खाली जगह पर।…कल की बात बताता हूं। कल शाम मैं एक दोस्त के घर पर था, जहां से आते हुए आधी रात हो गई। घर आया, देखा कि एक दोस्त आई हुई है और आराम से सोई हुई है।…यह मेरी जिन्दगी का अजीब खूबसूरत लम्हा था—वह खाली जगह भरी हुई थी।…मैंने हैरान होकर घर को देखा, और फिर इत्मीनान से सो गया।…सवेरे तड़के उठकर चाय बनाई, अपनी दोस्त को जगाया, और उसके हाथ में जब चाय का प्याला थमाया तब मैंने फिर घर को एक हैरानी से देखा। वह खाली जगह भरी हुई थी, चाहे एक दिन के लिए, एक घड़ी के लिए।

रमेश ! आप एक अखबार में इंटरव्यू देते हैं, "आइ एम नाट ए प्लेब्वाय" और फिर जबानी यह देते हैं, "मैंने झूठ बोला था, आइ एम ए प्लेब्वाय"—पर मैं सोचती हूं—रमेश का मन उस खाली जगह पर है जिसके गिर्द भले ही बीसियों लड़कियों के साये नजर आते हैं।

शायद यह सच है'''एक उमस-सी होती है, मैं उस उमस में तड़पता हूं, सांस रुक जाती है, फिर कहीं खिड़की खुलती है, हवा का झोंका आता है, कई बार मेंह की बूंदें भी, लगता है—मैं खुलकर सांस ले रहा हूं। उसे चाहे किसी चीज का नाम दे दीजिए, दिलचस्पी का, दिल्लगी का, पर उसमें मेरा सच है, आदि सच, अंत सच।

रमेश ! मेरे हाथ में पानी का गिलास है, आपके हाथ में ह्विस्की का, फिर उमस का एक जाम उस हौवा के नाम पर पेश कीजिए, जिसे रमेश जैसा आदम नसीब नहीं हुआ।

जन्नत से शायद आदम निकाला गया है, हौवा नहीं'''धरती पर सिर्फ मैं भटक रहा हूं, अकेला'''।

फिर दूसरा जाम खुदा के नाम पर पेश करते हैं कि वह हौवा को भी जन्नत से निकालकर नीचे धरती पर रमेश के पास भेज दे'''।

हौवा की जितनी भी बहनें मुझे मिलीं, सबने अपनी-अपनी जन्नत बना लीं। मैंने हर एक को आशीर्वाद देकर ब्याह करने के लिए भेज दिया, उन्हें भी, जिन्होंने कानूनन मुझसे ब्याह किए थे। मेरे कमरे के बाहर लिखा हुआ है, 'यहां रहना चाहो, जरूर रहो; जाना चाहो, जरूर जाओ !'

पर रमेश ! जानेवालियों के दर्द को आपने कभी सोचा है ? शायद कइयों को यह हसरत रही होगी कि रमेश बांह पकड़कर रोक ले, जाने न दे।

एक बार फिर झूठ बोलना चाहता हूं कि यह सब झूठ करते हुए मुझे दर

ार वहुत तकलीफ हुई ।···मैं ऊपर से हर समय हंसने वाला आदमी, ैसे फूट-फूटकर रो सकता हूं ?···कोई नहीं जानता···मेरी जीभ काली है—पर मेरा कोई दोस्त अपनी वीवी से लड़े तो मैं दोनों का गठवंधन करा देता हूं, ताकि किसीका कुछ वुरा न हो···काली जीभ से भी आशीर्वाद देता हूं ।

सरस्वती को शायद इस 'काली जीभ' पर मुहव्वत हो आई कि उसने आपसे 'अठारह सूरज के पौधे', 'वैसाखियों वाली इमारत', 'चलता हुआ लावा', 'खुले आम', 'देवयानी का कहना है' और 'वाहर आए हुए लोग' जैसी कृतियां लिखवा लीं ।

मैं कुछ नहीं कह सकता । देवयानी ने, जो कुछ कहना था, कह लिया ।··· मैंने अपनी जवान से सिर्फ तीसरी कसम खाई है कि अव जिससे मुहव्वत करूंगा, उसे जेव में रखी हुई घर की चाभी थमाकर, मैं फिर उस चाभी को अपनी जेव में नहीं डालूंगा ।

रजामंदी : एक कानून

(मणि मधुकर से बातचीत)

मणि ! आपके राजस्थान की रेत में भले ही कोई मीलों चलता रहे, पर कोई भी रास्ता अपने राही के पैरों का निशान अपने ऊपर नहीं पड़ने देता। क्या जिन्दगी के मरुस्थल में औरत के दिल का, उसके एहसास का, या उसकी मुहब्बत का निशान भी पड़ता है या नहीं ?

जरूर पड़ता है। अमृताजी ! आपने रेत का हवाला दिया है, हमारे वहां एक पेड़ होता है रोहेड़ा। रेगिस्तान में वसन्त की कल्पना नहीं की जा सकती, पर जैसे ही चैत्र चढ़ता है—चाहे बरसों से मेंह की एक बूंद भी न पड़ी हो—उस पेड़ पर बहुत बड़े-बड़े लाल फूल खिल जाते हैं··· अजीब आलम होता है। कोई ऊंट पर चढ़कर मीलों निकल जाए, कहीं घास की एक पत्ती भी उसे दिखाई नहीं देती, लेकिन अचानक रोहेड़ा दिखाई पड़ जाता है, लाल फूलों से लदा हुआ।···औरत और मर्द में जब मुहब्बत का रिश्ता होता है, हमारा रेगिस्तान का गीत उस मुहब्बत का इजहार बनता है। औरत मर्द से पूछती है, "तू रोहेड़ा बनेगा ?" तो मर्द जवाब देता है, "दरांती मार"। इसका अर्थ है कि जैसे रोहेड़ा के पक्के मजबूत पेड़ को छुरी या दरांती मारें तो उसमें से एक बूंद भी नहीं रिसती, उसी तरह तुम मुझे दरांती से भी मारोगी तो मेरे होंठों से भी शिकवा-शिकायत नहीं निकलेगी। यह तगड़ी मुहब्बत का वादा होता है।

लड़कियों का रिश्ता मां-बाप जोड़ते हैं कि उनकी अपनी मर्जी ?

उनकी अपनी मर्जी। कोई भी शहरी सभ्यता हमारे रेगिस्तान की राहों से नहीं गुजरी है। वहां औरत और मर्द को रोहेड़ा की तरह जवानी चढ़ती है, जब दोनों पर समझ के और मुहब्बत के फूल खिल जाते हैं, वे व्याह कर लेते हैं।

अगर आज के व्याह का फैसला कल को गलत लगे ?

गलत और सही जैसी बात भी वहां नहीं सोची जाती। जब व्याह किया जाता है, उस दिन वही सही बात होती है, और जब तोड़ा जाता है, उस दिन वही सही बात होती है।

सही 'लफ्ज' को आपने इतना सहज कैसे कर लिया है ?

हमारी दुनिया में लफ्जों का बहुत दखल नहीं है। लफ्जों को न हम जिन्दगी पर हावी होने देते हैं, न उन्हें यह हक देते हैं कि वे जिन्दगी को खाली कर जाएं।

औरत के व्याह में 'दूसरा' लफ्ज भी हावी नहीं होता ?

अमृताजी! रेगिस्तान की दुनिया में व्याह का कन्सैप्ट ही बिलकुल अलग है, यह किसी तरह भी एक-दूसरे पर कब्जे की शक्ल इख्तियार नहीं करता। जिन्दगी की जरूरतों को मिल कर पूरा करने के लिए व्याह होता है, जिसमें मन की जरूरत सबसे पहली जगह पर होती है। मिलकर रहते हुए अगर मन की जरूरत बदलती है, तो उस जरूरत के अनुसार औरत को भी मन के मर्द के पास जाने का हक होता है, और मर्द को भी मन की औरत के पास जाने का।...बड़ी छोटी-छोटी और सादी बातों पर रिश्ते जुड़ते हैं, जैसे मुझे भी सांगरी का साग पसंद है और उसे भी, मुझे भी वही बगड़ावत पसंद है जो उसे, या इसी तरह सुर-ध्यानी खयाल, या अजय दान और उमर दान की कविता।...और तो और, ऊंट की अमुक चाल मुझे भी पसंद है, और वही उसे भी, और ऐसी ही सादा-

दिए जाते थे, पर वह जवान लड़कियां ठाकुरों की सेज के लिए होती थीं। ऐसी कोई लड़की कभी भी अपने-आपको अपने मुंह से गोली नहीं कहती थी, उसने अपना नाम 'मौत' रखा होता था। कोई पूछता कि तुम कौन हो तो वह अपने नंबर के अनुसार कहती, "मैं तीसरी मौत हूं, या पांचवीं मौत हूं।"

ठाकुरों-जमींदारों के पीठ पीछे कि मुंह पर ?

बिलकुल मुंह पर। जैसे जिस गोली की बारी होती थी, जमींदार के साथ रात गुजारने की, वह ठीक समय पर उसका दरवाजा खटखटाती, वह पूछता, तुम कौन हो ? तो वह जवाब देती, "तीसरी मौत।"

यह ठाकुरों-जमींदारों ने कैसे कबूल कर लिया ?

जरूर बहुत बरस लगे होंगे, पर विद्रोह की यह जवान उन्हें कबूल करनी पड़ी थी, और आखिर में यह बोलचाल का हिस्सा हो गई थी। इसी तरह ठाकुर की ठकुराइन को हमेशा हर लड़की ठकुराइन कहती थी, पर जिस रात वह ठाकुर की सेज पर होती थी, उस रात वह ठकुराइन को 'लेर' कहकर बुलाती थी।

लेर यानी मुंह की लार ?

बिलकुल। उस रात वह नफरत से ठाकुर की ब्याहता बीवी को उसके मुंह का थूक कहकर बात करती थी। और यह सिर्फ ठकुराइन के पीठ पीछे नहीं होता था, मुंह पर होता था। यहां तक कि अगर ठाकुर को किसी दवा की या और किसी चीज की जरूरत पड़ती, ठकुराइन लेकर आती, तो दरवाजे के पास खड़े हो कर अपने मुंह से कहती, "मैं लेकर आई हूं, यह चीज देने के वास्ते।"

रेगिस्तान की औरत का यह पहलू सचमुच ऐतिहासिक क्रांति है।

अब भी जब दस-दस बरस तक वर्षा नहीं होती, अकाल पड़ जाता है तो रोटी की तलाश में लोगों को दूर के प्रांतों में जाना पड़ता है। मर्द कहीं

जौक-ए-नजर
(इमरोज चित्रकार से कुछ बातें)

इमरोज ? आपकी नजर में एक कलाकार का अपनी कला के लिए क्या फर्ज होता है ?

अपने विचारों को रंगों में स्पष्ट करना ।

चित्रकार के लिए रंगों में, और लेखक के लिए अक्षरों में, विचारों को स्पष्टता देना, एक ही कर्म है। पर इस स्पष्टता का संबंध आप किससे मानते हैं ? सिर्फ अपने से, या दर्शक और पाठक से भी ?

पहले अपने-आपसे, फिर उस दर्शक से जो उसे देखना चाहे। वही बात दर्शक की जगह पाठक के संबंध में भी कही जा सकती है।

दर्शक के साथ आपने 'जो' लफ्ज जोड़ा है—यानी जो दर्शक देखना चाहे। इस 'जो' की व्याख्या करेंगे ?

'जो' की व्याख्या दर्शक की आंख है। आंख की नजर। सरसरी नजर से देखने वाला व्यक्ति दर्शक नहीं होता। सरसरी नजर से सिर्फ दीवारों पर लिखा हुआ इश्तिहार देखा जा सकता है। और कलाकृति कभी इश्तिहार नहीं हो सकती।

दर्शक की आंख की, और नजर की व्याख्या करेंगे ?

यह इंसान का जौक होता है जो उसे अपने जौक के मुताबिक एक अच्छा

दर्शक, एक अच्छा पाठक, या एक अच्छा श्रोता बनाता है।

क्या इंसान के इस जौक के लिए भी कलाकार का कोई फर्ज होता है? वैसे मैं यहां फर्ज लफ्ज इस्तेमाल करना नहीं चाहती—यह लफ्ज मुझे सहज अर्थों में किसकी शख्सियत का हिस्सा नहीं लगता। यह कोई ऊपर से जबरदस्ती लादा हुआ लफ्ज लगता है। यह लफ्जों की सीमा है। मेरा मतलब है—क्या दर्शक या पाठक में जौक पैदा करने में भी कलाकार का कोई सहज कर्म होता है या नहीं?

जरूर होता है। कलाकार का अस्तित्व। जैसी कलाकार की शख्सियत होगी, वैसा उसकी कला का प्रभाव होगा, और उसी प्रभाव के मुताबिक लोगों में जौक पैदा होगा।

किसी निजी घटना की मिसाल दे सकते हैं?

अभी हाल में गाव सिधवा दोना से मुझे किसीका खत आया था—जिसमे महाभारत के उस भील लडके का जिक्र किया गया था जिसे तीरन्दाजी की शिक्षा के लिए गुरु द्रोणाचार्य ने अपना शिष्य नही बनाया था, पर उसने द्रोणाचार्य का बुत बनाकर, सामने रखकर उसे गुरु मान लिया, और तीरन्दाजी सीख ली…।

हां, जिसकी महारत को देखकर द्रोणाचार्य ने गुरु-दक्षिणा में उसके दाहिने हाथ का अगूठा माग लिया था।

हा, यही हवाला देकर उसने लिखा कि मैने चित्रकारी में आपको गुरु माना हुआ है। कभी मिला नही, पर जब मिलूगा, आप जो भी कहेंगे, वह गुरु-दक्षिणा दूगा। मैंने इस खत का जवाब इन लफ्जो मे दिया था कि कंवर! जो महाभारत की इस कथा को अपने माथ जोडकर चल सकता है, उसकी यह दीवानगी उसे मुबारक! और अगर वह अपना सारा वक्त, अपनी सारी सामर्थ्य और अपना सारा चिन्तन इस दीवानगी को अर्पित कर दे—तो आज के समय में—यही असली गुरु-दक्षिणा है।

सो, ऐसा खत लिखने वाले के पास भी एक जौक था, पर आपके जवाब का यह सहज कर्म है कि उसका जौक बढ़ गया होगा— जौक में यकीन भी बढ़ गया होगा।

कोई भी अच्छा कलाकार या अच्छा लेखक कद्रों-कीमतों का वह क्षितिज होता है—जो आम लोगों की नजर को, नजर की सीमा तक दिखाई देने वाली खूबसूरती तक ले जाता है।

कलाकार के लिए तस्कीन लफ्ज किन अर्थों में मानते हैं? और निराशा लफ्ज किन अर्थों में?

तस्कीं को हम न रोएं जो जौकें नजर मिले···

और मुहब्बत लफ्ज को आप कला से आगे मानते हैं या पीछे?

न आगे न पीछे। एक नुक्ते पर बात खत्म होती है, बिलकुल वहां, जहां कला के लिए जौक-ए-नजर होता है, वही जौक-ए-नजर इश्क के लिए होता है।

सो, ऐसा खत लिखने वाले के पास भी एक जौक था, पर आपके जवाब का यह सहज कर्म है कि उसका जौक बढ़ गया होगा—जौक में यकीन भी बढ़ गया होगा।

ई भी अच्छा कलाकार या अच्छा लेखक कद्रों-कीमतों का वह क्षितिज ता है—जो आम लोगों की नजर को, नजर की सीमा तक दिखाई ने वाली खूबसूरती तक ले जाता है।

कलाकार के लिए तस्कीन लफ्ज किन अर्थों में मानते हैं? और निराशा लफ्ज किन अर्थों में?

तस्कीं को हम न रोएं जो जौकें नजर मिले…

और मुहब्बत लफ्ज को आप कला से आगे मानते हैं या पीछे?

न आगे न पीछे। एक नुक्ते पर बात खत्म होती है, बिलकुल वहां, जहां कला के लिए जौक-ए-नजर होता है, वही जौक-ए-नजर इश्क के लिए होता है।

एक चीख का इतिहास

कई प्राचीन प्रेम-कथाएं हैं जिनका दुखान्त लोगों की छाती में कब्रें बनकर पड़ गया, जिन्होंने सदियों बाद भी उनके दर्द में अपने दर्द को पहचाना, उनके होठों से कई गीत फूलों की तरह झड़ते रहे—और उन फूलों को वह समय की और अपनी छाती में पड़ी हुई कब्रों पर चढ़ाते रहे।

दुनिया का कोई भाग नहीं है जहां लोग मुहब्बत के दुखान्त को गीतों की शक्ल में नहीं गाते। पर दुनिया में मुहब्बत के जितने भी दुखान्त मिलते हैं—उनके कारण, सारी दुनिया में लगभग एक जैसे ही हैं। हर दुखान्त का कारण—दो जनों से सम्बन्धित—तीसरी ओर की अस्वीकृति होती है। यह तीसरी 'ओर' किसी के मां-बाप भी हो सकते हैं, दो कबीलों में चली आ रही कोई पुरानी दुश्मनी भी, दोनों की आर्थिक हैसियतों का फर्क भी, या जाति और मजहब का अन्तर भी। पर सारे दुखान्त दो जनों की मंजूरी को नामंजूर करने वाली किसी तीसरी ओर तगड़ी ताकत के हाथों घटते हैं।

सिर्फ एक दुखान्त ऐसा है जिसका इतिहास में कोई लिखित उल्लेख नहीं मिलता—औरत की स्वतन्त्र हैसियत, जब इतिहास का एक बीता हुआ काल बन रही थी, और उसका हुस्न, सोने-चांदी जैसी एक वस्तु होकर मर्द की जायदाद का हिस्सा बन रहा था—उस समय समस्त औरत की कैसी चीख निकली होगी, इसका कोई गीत ऋग्वेद से लेकर किसी

वेद-उपनिषद का हिस्सा नहीं बना।

औरत ने मुहब्बत तब भी की होगी—मुहब्बत के योग्य कोई मर्द तब भी रहे होंगे—सिर्फ उनका दु:खान्त कभी इतिहास का हिस्सा नहीं बना।

पर इस चीख की एक मिसाल राहुल सांकृत्यायन की उस किताब में मिलती है जिसमें छह हजार ईसा पूर्व से लेकर सन् १९४२ ईसवी तक—मनुष्य-समाज की ऐतिहासिक, आर्थिक, और राजनीतिक तब्दीलियों का वर्णन किया गया है। और जिसका आरंभ आज से ३६१ पीढ़ियां पहले की आर्य जाति की एक कहानी से होता है। इसी किताब 'वोलगा से गंगा तक' में एक सुन्दरी अपाला की कथा है, एक हजार पांच सौ ईसा पूर्व के समय की।

अपाला, मद्रपुर (सियालकोट) के जेता की पुत्री है जो पंचाल (रोहेलखंड) से आए हुए एक राहगीर सुदास पंचाल से, उसके गुणों पर मोहित होकर, मोहब्बत करने लगती है।

सुदास पंचाल असल में पांचाल के राजा का पुत्र है जो राजगद्दी को लोगों से छीना हुआ हक समझता है। लोकराज की जगह किसी एक की राजगद्दी उसे अन्याय लगती है। इसे वह जन-राज्य से विश्वासघात समझता है। राजा की ओर से कुछ 'बुद्धिमानों' को दी गई पुरोहित-पदवी भी उसे रिश्वत लगती है, जो राजा अपने राज की नींवों को पक्का करने के लिए देता है कि वह पुरोहित लोक-मन को पलटकर लोगों को राजा की आज्ञा का उल्लंघन करने के योग्य न रहने दें। राजा और पुरोहित में उसे सिंहासन-वेदी और यज्ञ-वेदी नामों का ही अन्तर लगता है, कर्म का अन्तर नहीं। उसने अपने पिता का रनिवास देखा हुआ है, जो नित नई सुन्दरियों से भरा जाता है, और जहां उसकी मां एक 'स्वयं' हीन वस्तु बन चुकी है।

पर अपाला मद्रपुर की जन्मी-पली है—जहां जन-राज्य है, जहां जन (पिता) है। पर वह जानती है कि पांचाल में जन प्रजा बन चुका है। इसीलिए जब मुहब्बत, जिन्दगी के साथ का रूप बनने लगती है, उस

समय वह अपार सुन्दरी अपाला सुदास से कहती है, "मुझे इनकार करके बहुत दुःख होगा, पर उस दुःख का निर्णय तुम्हारे हाथ में है।"

सुदास पूछता है, "वह कैसे?"

अपाला कहती है, "क्या तुम सदा के लिए मेरे पास यहां रह सकोगे?"

सुदास अपनी अपार मुहब्बत की बात करता है तो अपाला कहती है, "मैं सदा तुम्हारी हूं, तुम्हारी रहूंगी पर मानव-धरती को छोड़कर मैं अमानव-धरती पर जाकर नहीं रहूंगी। पाताल में इन्सान की कोई कीमत नहीं है यहां औरत की स्वतंत्रता नहीं है।'

सुदास आंखों में आंसू भरकर अपाला के होंठ चूमता है इकरार करता है कि वह बूढ़ी मां से मिलने जाएगा क्योंकि यह मां की अंतिम इच्छा थी, और फिर लौटकर अपाला के पास आ जाएगा।

सुदास वापस जाता है, पर पिता की मृत्यु उसके वापस लौटने का समय बहुत लंबा कर देती है। अपाला की याद उसके मन-मस्तक की चीस है। पर वर्षों बाद जब वह लौटता है—अपाला विरह की असह्य पीड़ा सहती—और उसकी पल-पल प्रतीक्षा करती हुई सांसों का तार तोड़ चुकी होती है। सुदास उसके कपड़ों को छाती और आंखों से लगाकर रो उठता है।

अपाला शायद सिर्फ एक सुन्दरी का नाम नहीं है,— उस सबे इतिहास की एक चीस का नाम है जब औरत ने 'स्वयं' को साबित रखने के लिए सिर्फ राजमहल का सुख ही नहीं त्यागा, अपने महबूब का वस्ल भी न्योछावर कर दिया था।

वेद-उपनिषद का हिस्सा नहीं बना।

औरत ने मुहब्बत तब भी की होगी—मुहब्बत के योग्य कोई मर्द तब भी रहे होंगे—सिर्फ उनका दुःखान्त कभी इतिहास का हिस्सा नहीं बना।

पर इस चीख की एक मिसाल राहुल सांकृत्यायन की उस किताब में मिलती है जिसमें छह हजार ईसा पूर्व से लेकर सन् १६४२ ईसवी तक—मनुष्य-समाज की ऐतिहासिक, आर्थिक, और राजनीतिक तब्दीलियों का वर्णन किया गया है। और जिसका आरंभ आज से ३६१ पीढ़ियां पहले की आर्य जाति की एक कहानी से होता है। इसी किताब 'वोल्गा से गंगा तक' में एक सुन्दरी अपाला की कथा है, एक हज़ार पांच सौ ईसा पूर्व के समय की।

अपाला, मद्रपुर (सियालकोट) के जेता की पुत्री है जो पंचाल (रोहेलखंड) से आए हुए एक राहगीर सुदास पंचाल से, उसके गुणों पर मोहित होकर, मोहब्बत करने लगती है।

सुदास पंचाल असल में पांचाल के राजा का पुत्र है जो राजगद्दी को लोगों से छीना हुआ हक समझता है। लोकराज की जगह किसी एक की राजगद्दी उसे अन्याय लगती है। इसे वह जन-राज्य से विश्वासघात समझता है। राजा की ओर से कुछ 'बुद्धिमानों' को दी गई पुरोहित-पदवी भी उसे रिश्वत लगती है, जो राजा अपने राज की नींवों को पक्का करने के लिए देता है कि वह पुरोहित लोक-मन को पलटकर लोगों को राजा की आज्ञा का उल्लंघन करने के योग्य न रहने दें। राजा और पुरोहित में उसे सिंहासन-वेदी और यज्ञ-वेदी नामों का ही अन्तर लगता है, कर्म का अन्तर नहीं। उसने अपने पिता का रनिवास देखा हुआ है, जो नित नई सुन्दरियों से भरा जाता है, और जहां उसकी मां एक 'स्वयं' हीन वस्तु बन चुकी है।

पर अपाला मद्रपुर की जन्मी-पली है—जहां जन-राज्य है, जहां जन (पिता) है। पर वह जानती है कि पांचाल में जन प्रजा बन चुका है। इसीलिए जब मुहब्बत, जिन्दगी के साथ का रूप बनने लगती है, उस

समय वह अपार सुन्दरी अपाला सुदास से कहती है, "मुझे इनकार करके बहुत दुःख होगा, पर उस दुःख का निवारण तुम्हारे हाथ में है।"

सुदास पूछता है, "वह कैसे ?"

अपाला कहती है, "क्या तुम सदा के लिए मेरे पास यहां रह सकोगे ?"

सुदास अपनी अपार मुहब्बत की बात करता है, तो अपाला कहती है, "मैं सदा तुम्हारी हूं, तुम्हारी रहूंगी, पर मानव-धरती को छोड़कर मैं अमानव-धरती पर जाकर नही रहूंगी। पांचाल मे ईमान की कोई कीमत नही है जहां औरत की स्वतंत्रता नही है।"

सुदास आंखों में आंसू भरकर अपाला के होंठ चूमता है, इकरार करता है कि वह बूढ़ी मां से मिलने जाएगा, क्योंकि यह मां की अंतिम इच्छा थी, और फिर लौटकर अपाला के पास आ जाएगा।

सुदास वापस जाता है, पर पिता की मृत्यु उसके वापस लौटने का समय बहुत लंबा कर देती है। अपाला की याद उसके मन-मस्तक की चीस है। पर वर्षों बाद जब वह लौटता है—अपाला विरह की असह्य पीड़ा सहती—और उसकी पल-पल प्रतीक्षा करती हुई सांसों का तार तोड़ चुकी होती है। सुदास उसके कपड़ों को छाती और आंखों से लगाकर रो उठता है।

अपाला शायद सिर्फ एक सुन्दरी का नाम नही है,—उस लंबे इतिहास की एक चीख का नाम है जब औरत ने 'स्वयं' को साबित रखने के लिए सिर्फ राजमहल का सुख ही नहीं त्यागा, अपने महबूब का वस्ल भी न्योछावर कर दिया था।

सच दी धूनी आशक बहिंदे[1] (मुहब्बत और इखलाक का रिश्ता)

औरत और मर्द की मुहब्बत से लेकर, घर-कुटुंब की, और कुल आलम की मुहब्बत तक का फलसफा, सबसे पहले चीन में कनफ्यूशियस ने मानव जाति के सामने रखा था। इस फिलासफर का जीवन काल ५५१-४७९ ईसा पूर्व था। कनफ्यूशियस के खानदानी विरसे के बारे में कुछ पता नहीं है। सिर्फ यह कि उसका खानदानी नाम कुंग था। जवानी उसने गरीबी में बिताई थी, पर स्वयं-साधना से उसने इतना इल्म हासिल किया कि अपने समय का सबसे बड़ा आलिम माना गया। मानव-जाति की पीड़ा से संवेदना का एक ऐसा बीज उसकी रूह में पड़ गया—जो चिन्तन में भी विकसित हुआ, और धरती और आकाश जैसी विस्तृत मुहब्बत के रूप में भी।

उस काल का चीन कई रजवाड़ों में बंटा हुआ था, जिनके अमीर केवल रंगरलियां मनाने और मनमानी करने में व्यस्त रहते थे। लोगों से जबर्दस्ती मजदूरी करवाई जाती थी और उनसे गैर-इंसानी और गैर-कानूनी व्यवहार किया जाता था। आम लोग दुख और भूख के हाथों पीड़ित थे। कनफ्यूशियस ने इसका कोई बुनियादी हल खोजने के लिए सरकारी निजाम में तब्दीलियां चाहीं, जोकि उस समय के हाकिमों को खतरनाक

---

१. सच्चाई की धूनी आशिक रमाते हैं।

प्रतीत हुई। हाकिमों के सामने कोई सुनवाई नहीं थी—इसलिए कनफ्यूशियस ने नई पीढ़ी के, और गर्म खून वाले, कुछ जवान लड़कों को इकट्ठा करके—अपना चिन्तन बनाना शुरू किया। इस तरह हजारों लोग उसके मुरीद बने, जिन्होंने पूरे दो हजार बरस तक उसके चिन्तन को जीवित रखा। पर जीते-जी अपने विचारों को कोई विशेष मान्यता प्राप्त होते न देखकर उसने लंबे-लंबे फासलों की यात्राएं कीं और जगह-जगह जाकर अपने चिंतन को लोगों में बांटा। जब वह ६७ वर्ष का था, उसके कुछ मुरीद-आशिकों ने उसे फिर वापस बुला लिया, और वह लू नामक शहर में ७२ वर्ष की आयु तक जीवित रहा। कोई बगावत उसके चिंतन में शामिल नहीं थी। वह इल्म की बुनियादी पर इंसान के इखलाक का निर्माण चाहता था। इखलाक उसकी सारी फिलासफी का धुरा था जिसके बिना न औरत और मर्द का रिश्ता बन सकता था, न राजा और प्रजा का। उसके शब्दों में, "किसी भी उस व्यक्ति को राज करने का अधिकार नहीं है जिसके पास इखलाक और काबलियत नहीं है।"—कनफ्यूशियस का त्रिगुणात्मक फलसफा इंसानियत, समझदारी और साहस पर आधारित था, जिसके बिना जिन्दगी सिर्फ एक अर्थहीनता का नाम होती है।

इस त्रिगुणात्मक फलसफे को कनफ्यूशियस ने आगे आठ हिस्सों में बांटा था—१. वस्तुओं की खोज, २ इल्म का विस्तार, ३. संकल्प की सच्चाई, ४. मानसिक उन्नति, ५. निजी जिन्दगी का ऊंचा स्तर, ६ औरत और आदमी का सुलझा हुआ रिश्ता, ७. निजाम में उसूलों का इस्तेमाल, ८. दुनिया में अमन।

कनफ्यूशियस एक आशिक-दिल फिलासफर था, जिसके इश्क की धरती 'स्वयं' से लेकर कुल आलम तक फैली हुई थी···

दुनिया के हर निजाम में इंसान का जो इतिहास बनता रहा है, और बन रहा है—उसका हर पृष्ठ साधारण और मासूम लोगों के आंसुओं से, और उनके खून के छींटों में, क्यों भीगा हुआ है? हर बगावत सफल

होकर भी आखिर में असफल क्यों हो जाती है ? हर जंग अपने अस्तित्व मे से एक नई जंग को जन्म क्यों देती है ? ऐसे हर सवाल का जवाव उस हवा में है जो हर निजाम की वद-इखलाकी से जहरीली हो चुकी है जिसमें सांस लेने वालों के मासूम सपने छातियों में हिचकियां लेते हुए आखिर में सांस तोड़ देते हैं।

दुनिया के आशिक, फिलासफर, और वली, पीर कोई असाधारण लोग नहीं होते, पर वह सिर्फ इसलिए असाधारण मालूम होते हैं क्योंकि वह स्वयं-साधना से दुनिया की जहरीली हवा में सांस लेते हुए भी अपनी रूह को जहरीली हो जाने से वचा लेते हैं।

यही इखलाक होता है—यही रूह की पाकीजगी—जिसने मुहव्वत लफ्ज के अस्तित्व को आज भी कल्पना और हकीकत की शक्ल में दुनिया में कायम रखा हुआ है।

मुहव्वत का वुनियादी रिश्ता इखलाक से है। 'स्वयं' की वह शख्सियत जो सिर्फ कद्रों-कीमतों से वनती है, और ऐसी नजर हासिल करती है—जिससे वह किसी दूसरे की शख्सियत को पहचान लेती है। यही पहचान मुहव्वत है। यही इश्क एक 'मैं' में एक 'तू' का जमा है—और आखिर में 'मैं' में 'दुनिया' का जमा।